



श्री बलराम जाखड, अध्यक्ष लोक सभा, कांगड़ी ग्राम में ग्राम के विकास के विषय में बार्ता करते हुए। इस अवसर पर उन्होंने राष्ट्रीय सेवा योजना के विद्यार्थियों से भी बातचीत की। दायें से श्री जी० बी० के० हूजा कुलपति, श्री धर्मपाल राव, बी० डी० ओ०, श्री बलराम जाखड, अध्यक्ष लोकसभा, डा० बी० डी० जोशी, प्रोग्राम ऑफिसर रा० से० यो०, डा० विजय शंकर निदेशक कांगड़ी ग्राम विकास योजना।

ओ३म्

आर्य भट्ट

विज्ञान-पत्रिका

सितम्बर, १९८५



प्रधान-सम्पादक :

डा० विजय शंकर

अध्यक्ष : वनस्पति विज्ञान विभाग

परामर्शदाता :

प्रो० सुरेशचन्द्र त्यागी

प्राचार्य : विज्ञान महाविद्यालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
(उत्तर प्रदेश)

मूल्य : रु० ५.००

सम्पादक—मण्डल—

डा० बी० डी० जोशी, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, जन्तु विज्ञान विभाग

डा० अरुण आर्य, वनस्पति विज्ञान विभाग

डा० रामकुमार पालोवाल, अध्यक्ष, रसायन विज्ञान विभाग

डा० ए० के० इन्द्रायण, रसायन विज्ञान विभाग

श्री एच० सी० घोवर, अध्यक्ष, भौतिकी विभाग

श्री विजेन्द्र कुमार शर्मा, गणित विभाग

प्रकाशक—

मेजर वीरेन्द्र अरोड़ा

कुलसचिव

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

हरिद्वार (उ०प्र०) २४६ ४०४

मुद्रक—

जेना प्रिन्टर्स, ज्वालापुर

विषय-सूची

क्रम सं०	विषय	लेखक	पृष्ठ
१.	सम्पादकोय : गंगा को स्वच्छ कैसे रखा जाये : ऋषिकेश-हरिद्वार	डा० वि० शंकर	५
२.	हमारे वैज्ञानिक : डा० वाई० नायडम्मा		=
३.	राष्ट्रीय सगोष्ठी : गंगा प्रदूषण	डा० विजय शंकर	६
४.	कागडी ग्राम विकास योजना	डा० विजय शंकर	१२
५.	क्या दिया ? क्या लिया ?	कुमार हिन्दी	१६
६.	रूम क्लर	श्री हरिशचन्द्र प्रोवर	१८
७.	कृषि व वानिकी मे हितकारी मिट्टी के सूक्ष्म जीव	डा० पुरुषोत्तम कौशिक	२०
८.	हिमालय : पर्यावरण समस्याएं एवं समाधान-१	डा० बी० डी० जोशी	२३
९.	शंवाल से खाद	डा० अरुण आर्य	३१
१०.	कण्व आश्रम एवं हिमालय-शोध- योजना—सक्षिप्त परिचय	डा० बी० डी० जोशी	३७
११.	समाज के लिये गणित की उपयोगिता	श्री विजयेन्द्र कुमार	४१
१२.	गंगा के सलिलीय कवक	प्रो० विजय शंकर एवं डा० गंगाप्रसाद गुप्त	४७
१३.	गंगा समन्वित योजना	डा० विजय शंकर	५०

विश्व पर्यावरण दिवस समारोह : ५-६ जून, १९८५

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

‘समाचारपत्रों से’

‘प्रदूषण रोकने के लिए गंगा के किनारे पेड़ लगाए जाएँ’

—नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली

८ जून, १९८५

× × ×

‘गंगा के किनारे विद्युत-शववाहगृहों की शृंखला बनाने का मुझाब’

—दैनिक जागरण, मेरठ

८ जून, १९८५

× × ×

‘पर्यावरण अपकव रोकने हेतु वृक्षारोपण, विद्युत-शववाहगृह एवं ट्रीटमेंट

प्लांट के लिये सिफारिश’

—शक्ति सदेश, हरिद्वार

८ जून, १९८५

× × ×

‘गंगा प्रदूषण—कारण एवं निवारण’

—द हॉक (अंग्रेजी साप्ताहिक)

७ जून, १९८५

× × ×

‘गंगा की शुद्धता हेतु किये जाने वाले उपायों पर परिचर्चा सम्पन्न’

—नार्दन इंडिया पत्रिका, लखनऊ

रविवार ६ जून, १९८५

गंगा को स्वच्छ कैसे रखा जाये :

ऋषिकेश-हरिद्वार

गंगा का पानी स्वच्छ रहे, प्रदूषित न हो, इसके लिये अनेक स्तरो पर प्रयास हो रहे हैं। सेन्ट्रल गंगा अथॉरिटी ने सर्वप्रथम ऋषिकेश-हरिद्वार क्षेत्र में आगामी कुम्भ को दृष्टि में रखते हुए गंगा को साफ करने का निर्णय लिया है। गंगा-जिवालिक का यह क्षेत्र पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण की दृष्टि से और धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं रोचक है। इस क्षेत्र में पर्वत-शृङ्खलाओं के साथ-साथ गंगा जैसी पवित्र नदी है, नहरें हैं, शहरी एवं ग्रामीण बस्तियाँ हैं, छोटे-बड़े अनेक उद्योग हैं।

यह क्षेत्र अनेक आस्थाओं, मान्यताओं और भावनाओं से जुड़ा हुआ है। यहाँ देश-विदेश से लोगो का ताता प्रायः पूरे वर्ष लगा रहता है। यहाँ देश भर से लोग आकर मृतकों की अस्थियाँ प्रवाहित करते हैं। नाना प्रकार की वनस्पति, जिनमें औषधीय पौधे, इमारती लकड़ी वाले वृक्ष और आर्थिक दृष्टि से अन्य उपयोगी पौधे सम्मिलित हैं, दूर-दूर तक अपना साम्राज्य स्थापित किये हुए थे। कितनी ही आयुर्वेदिक फार्मसी यहाँ औषधि-निर्माण में लगी हुई है। भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स लि० एवं आई० डी० पी० एल० लि० जैसे दो बड़े कारखाने यहाँ शोभायमान हैं। इनके उत्प्रवाह क्रमशः गंगा एवं ऊपरी गंगा नहर में मिलते हैं। बस्ती के अनेक गन्दे नाले, पहाड़ियों से उतरती हुई अनेक छोटी-बड़ी बरसाती धाराएँ नीचे शहर की गन्दगी को समेटते हुए गंगा के जल को मिला करते हुए दृष्टिगोचर हैं।

इस क्षेत्र में गंदे नालों के अतिरिक्त प्राकृतिक ससाधनों का अन्धाधुन्ध उपयोग पर्यावरण में गिरावट के मुख्य कारणों में से एक है। अनेक औषधीय पौधे विरल होते जा रहे हैं। कुछ तो स्थानीय रूप से समाप्तप्रायः हैं। इमारती एवं ईंधन, लकड़ी के वृक्ष बहुत बड़ी संख्या में काट लिये गये हैं। नगी होती हुई पहाड़ियाँ इनके प्रमाण हैं। ये मानव को चेतावनी दे रही हैं कि यदि वह भूमि

को नगा करेगा तो स्वयं भी एक दिन उन्हीं की तरह नंगा-भूखा और प्यासा हो जायेगा। पानी होगा पर पी नहीं सकेगा, जैसे नगी भूमि पर पानी गिरता है किन्तु रुक नहीं पाता है। अरस्तु ने एक बार कहा था : "मिट्टी पौधों का पेट है।" क्या हम मिट्टी को लात मारकर स्वयं अपने पेट पर लात खाने से बच सकते हैं ? नहीं। कुछ समय पूर्व भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स लि० के एक मैनेजर की एम्बेसेडर कार हरिद्वार में ललताराव नाले में कुछ देर की वर्षा से ही बह गयी। इसी प्रकार अगस्त १९८५ में हरिद्वार में और पास ही बिजनौर जिले में बड़ते हुए भूस्खलन एवं पहाड़ीधाराओं (नालो) द्वारा गंगा-तट पर बसे ग्रामों की भूमि काटना गिरती हुई पारिस्थितिकी के ही परिणाम है।

आज स्थिति यह है कि शिवालिक की पहाड़ियाँ बढ़ते हुए भूमि अपरदन की मिसाल बनी हुई हैं। भूमि की जलशोषण क्षमता इतनी घट गई है कि इधर वर्षा हुई और उधर प्रायः सारा पानी मिट्टी को बहाता हुआ नीचे बस्ती में, सीवर के अन्दर, नहर में एवं सड़को पर मिट्टी की एक बड़ी मात्रा जमाता चला जाता है। मिट्टी से भरते हुए सीवर लाइन की उत्प्रावाहकक्षमता प्रभावित होती है और उत्प्रावाह ऊपर निकलकर स्थान-स्थान पर गंगा के पवित्र जल में मिलकर उसे गंदा करते हैं। अतः इस क्षेत्र में गंगा को स्वच्छ रखने के जा प्रयास हो रहे हैं उनमें उक्त बातों का ध्यान रखना नितान्त आवश्यक होगा। ऋषिकेश-हरिद्वार में गंगा को प्रदूषण से मुक्त करते समय हमारी नजर केवल गन्दे नालों पर ही टिकी हुई नहीं रह सकती है, पर्यावरण गिरावट के अन्य कारकों पर भी ध्यान आवश्यक है, जैसे भूमि अपरदन, वृक्षों का बेहिसाब काटा जाना, सीवर पम्पिंग स्टेशनों का पूरे समय तक न चलना, हरिकी पीढ़ी के प्लेटफार्म पर दुकानों का बने रहना, बर्तन साफ करना एवं गन्दगी का गंगा जल में बहाना आदि। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में गंगा समन्वित योजना (भारत सरकार पर्यावरण विभाग) ने जो तीन रिपोर्ट गंगा पर्यावरण पर तैयार एवं प्रकाशित की इनमें ऋषिकेश, हरिद्वार एवं बिजनौर-सहारनपुर क्षेत्रों में अपकर्ष के कारणों एवं उनके उपचार के लिए विनम्र सुझाव दिये गये हैं (१९८४)। इसके लिए मुख्य अन्वेषक गंगा योजना ने ओ० सी० हरिद्वार नगरपालिका श्री दूबे, डा० अभयसिंह जिला स्वास्थ्य अधिकारी हरिद्वार, सेनीटरी इन्स्पेक्टर हरिद्वार, सुपरिन्टेन्डिंग इंजीनियर पूर्वी गंगा नहर, श्रीजैन, ऋषिकेश नगरपालिका के कर्मचारी, हरिद्वार के समाजसेवी श्री ओम्प्रकाश के साथ सभी स्थानों का मौके पर जाकर अध्ययन एवं विचार-विमर्श किया। जलनिगम के अधिशासी अभियन्ता श्री ओ०पी० वीर से भी हरिद्वार की प्रदूषण की समस्या पर विचार-विमर्श हुआ। उ०प्र० पोल्यूशन कंट्रोल बोर्ड के चैयरमैन श्री त्यागी से भी बात हुई।

गंगा के प्रदूषण का एक अन्य स्रोत वे श्मशान हैं जहाँ अधिक संख्या में शव-दाह किये जाते हैं। इस प्रदूषण को रोकने के लिए यह आवश्यक है कि उपयुक्त

स्थानों पर विद्युत् शवदाहगृह बनाये जाये। पिछले ५-६ जून को श्री कुलपति जी की प्रेरणा से विप्रबिद्यालय में गंगा प्रदूषण राष्ट्रीय सगोष्ठी हुई एवं हरिकी पौड़ी पर एक पर्यावरण प्रदर्शनी लगाई गयी। सगोष्ठी ने प्रदूषण को रोकने एवं पर्यावरण को समृद्ध करने के लिए कुछ संस्तुतियाँ प्रस्तुत की। इनमें वृक्षारोपण के लिए उपयुक्त पौधों की सूची दी गई, सिन्थेटिक कीटनाशी एवं डेटरजेंट के स्थान पर पौधों से प्राप्त उत्पादों के प्रयोग पर बल दिया गया। नदी-तट, पहाड़ियों एवं खाली स्थानों पर सुनियोजित वृक्षारोपण करने की सिफारिश की गई। बायलॉजिकल ट्रीटमेंट प्लांट के निर्माण एवं सौर ऊर्जा के उपयोग पर बल दिया गया। यह संस्तुतियाँ इस अंक में विस्तार से दी जा रही हैं। गंगा को शुद्ध और साफ रखने का प्रारूप बनाते समय इनको दृष्टि में रखना आवश्यक होगा। नदी, पहाड़, शहर, जंगल, खेत आदि किसी स्थान के पर्यावरण को प्रदूषण से मुक्त करने में, उसमें हो रही गिरावट को रोकने और उसे समृद्ध बनाने में उस स्थान की सम्पूर्ण तस्वीर दूर तक हमारे सामने होनी चाहिए। इसे टुकड़ों में देखने से काम नहीं चलेगा। अतः गंगा को स्वच्छ करने के प्रयास में निगाह अगर गंगा में गिरते हुए नालों तक ही सीमित है और अन्य बातें ध्यान में नहीं हैं तो सफलता सीमित ही मिलेगी।

—वि० शंकर

हमारे वैज्ञानिक—

डा० वाई० नायडम्मा

हमारे देश के ख्यातिप्राप्त वैज्ञानिक और वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के भूतपूर्व महानिदेशक डा० वाई० नायडम्मा का आकस्मिक निधन गत २३ जून को आयरलैण्ड के समुद्रतट के निकट हुयी कनिष्क विमान दुर्घटना में हुआ। आप अन्तर्राष्ट्रीय विकास ग्रुप की एक विशेष बैठक में भाग लेकर मॉन्ट्रियल (कनाडा) से नई दिल्ली लौट रहे थे। राष्ट्रीय चर्म अनुसंधान संस्थान मद्रास के संस्थापक सदस्यो में प्रमुख डा० नायडम्मा देश के उन थोड़े-से वैज्ञानिकों में थे जिन्होंने सी०एस०आई०आर० को एक मजबूत धरातल प्रदान किया।

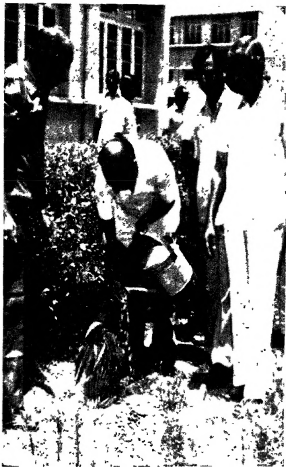
१० सितम्बर १९२२ को जन्मे डा० येलावर्थी नायडम्मा का शैक्षणिक रिकार्ड श्रेष्ठ था। औद्योगिक रसायन में स्नातक की परीक्षा १९४३ में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण करने के पश्चात आपने मद्रासस्थित चर्म प्रौद्योगिकी संस्थान में कार्य प्रारम्भ किया। इस क्षेत्र में उच्च अध्ययन एवं विशेष प्रशिक्षण हेतु आप १९४६-४७ में ब्रिटेन एवं १९४७-४९ में अमेरिका गये।

विदेशों से विशेष दक्षता प्राप्त कर लौटने के पश्चात आपने चर्म अनुसंधान संस्थान को एक स्वतन्त्र और राष्ट्रीय शोध प्रयोगशाला का स्वरूप प्रदान करने में समुचित सहयोग दिया। १९५८ में आप इस संस्थान के निदेशक नियुक्त हुये, इनके सरक्षकत्व में संस्थान को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुयी।

१९७१ से १९७७ के मध्य ६ वर्षों तक महानिदेशक पद पर कार्य करते हुये, आपने वैज्ञानिक एवं औद्योगिकीय अनुसंधान परिषद को नई दिशा प्रदान की। उन्होंने उद्योगों में वैज्ञानिक तकनीकों को प्रयोग करने हेतु समुचित सुविधायें उपलब्ध करायीं। महानिदेशक पद से अवकाश प्राप्त करने के पश्चात आप पुनः मद्रास चले गये और अपना अनुसंधान कार्य जारी रखा। १९८१ में कुछ समय तक आप जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली के कुलपति रहे।

१९७१ में पद्मश्रीप्राप्त, डा० नायडम्मा खान एवं कृषि संगठन के परामर्शदाता रहे। वे समुक्त राष्ट्र सच की अन्य अनेक विकास समितियों से सम्बद्ध थे। आप आन्ध्र प्रदेश सरकार के वैज्ञानिक एवं तकनीकी परिषद के उपाध्यक्ष पद पर भी रहे। डा० नायडम्मा का यह दृढ़ विश्वास था कि वैज्ञानिकों का कार्यक्षेत्र सिर्फ प्रयोगशालाओं तक सीमित न हो। उन्होंने शोध को दैनिक जीवन और विशेषकर औद्योगिक प्रगति से जोड़ने हेतु महत्वपूर्ण कार्य किया। उनके असामयिक निधन से देश ने एक अप्रतिम वैज्ञानिक, महान तकनीकी विशेषज्ञ और योग्य प्रशासक खो दिया।

✱



पर्यावरण दिवस तथा गंगा प्रदूषण सप्ताह पर मुख्य अतिथि के रूप में पधारे हुए मेरठ के आयुक्त श्री बी० के० गोस्वामी वृक्षारोपण करते हुए। डा० विजय शर्मा, डा० बी डी० जोशी तथा कुलसचिव निकट खड़े हैं।



पर्यावरण दिवस तथा गंगा प्रदूषण संगोष्ठी के अवसर पर हरि की पेंड़ी पर विश्वविद्यालय द्वारा लगाई गई प्रदर्शनी का अवलोकन करते हुए पूर्वसोसद् आचार्य भगवानदेव, कुलपति श्री हूबा, गंगा-सभा के अधिकारी तथा यात्रीगण ।

राष्ट्रीय संगोष्ठी : गंगा प्रदूषण

वनस्पति विज्ञान विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

* संस्तुतियाँ *

गंगा प्रदूषण पर विश्वविद्यालय में जून ५-६, १९८५ को हुई संगोष्ठी में सम्पूर्ण गंगा क्षेत्र में विद्यमान पर्यावरण अपकर्ष को, जिसमें प्रदूषण भी शामिल है, दूर करने के लिये एवं गंगा पर्यावरण के संरक्षण एवं समृद्धि के लिये विभिन्न विश्वविद्यालयों के वैज्ञानिकों, जल निगम एवं कारखानों के इंजीनियर्स, नगर-पालिका एवं स्वास्थ्य अधिकारियों, राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ एवं एन्टीबायोटिक्स फैक्टरी के वैज्ञानिकों आदि ने समस्या के विभिन्न पहलुओं पर शोधपत्र एवं मौखिक रूप से विचार प्रस्तुत किये। संगोष्ठी का उद्घाटन मेरठ मण्डल के आयुक्त श्री वी० के० गोस्वामी ने किया। विश्वविद्यालय के कुलपति श्री जी०बी०के० हूजा, आई०ए०एस० (रिटायर्ड) ने वैज्ञानिकों तथा अन्य अतिथियों का स्वागत किया। डा० विजय शंकर इस संगोष्ठी के संयोजक थे। आयोजन में डा० आर०पी० एस० सामू, शोध वैज्ञानिक, डा० अरुण आर्य तथा गंगा प्रोजेक्ट एवं वनस्पति विज्ञान विभाग के कर्मचारियों का योगदान सराहनीय रहा। संगोष्ठी के आयोजन में कुलसचिव मेजर वीरेन्द्र अरोड़ा, उप-कुलसचिव डा० श्यामनारायण सिंह एवं वित्त अधिकारी श्री बी०डी० भारद्वाज का विशेष योगदान रहा।

संगोष्ठी एवं प्रदर्शनी हेतु वित्तीय अनुदान निम्नलिखित से प्राप्त हुआ—

- १—पर्यावरण विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली।
- २—विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली।
- ३—वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली।
- ४—विज्ञान एवं पर्यावरण विभाग, उ०प्र० सरकार।

संगोष्ठी में भावी कार्यक्रम के लिये निम्नलिखित संस्तुतियाँ प्रस्तुत की गईं—

- १—नगरपालिकाएँ एवं उद्योग बायोलोजिकल ट्रीटमेन्ट प्लान्ट्स का निर्माण

कराकर एफ्लूएण्ट्स को उपचारित करे और जहाँ संभव हो ईंधन, गैस और उर्वरक का उत्पादन करके एफ्लूएण्ट्स को उपयोगी बनाये।

२—नदियों के किनारे एवं पहाड़ियों पर सघन वृक्षारोपण करके भूअपर्दन को रोकें एवं भूमि की जलावशोषण क्षमता को बढ़ाये। इनमें औषधीय पौधे भी शामिल हों।

३—गंगा के किनारे स्थित उन शहरों में, जहाँ अधिक संख्या में शवदाहन किया जाता है, विद्युत शवदाहगृहों के निर्माण कराकर लकड़ी की बचत की जाये, जिससे जंगलों की कटाई कम हो सके। इसके लिये जनता को शिक्षित करने की आवश्यकता होगी। लोगों की धार्मिक एवं परम्परागत भावनाओं का आदर करते हुए विद्युत शवदाहगृहों का वातावरण अत्यन्त प्राकृतिक एवं स्वच्छ रखा जाये। जहाँ विभिन्न प्रकार के पौधे जिसमें धार्मिक पौधे भी शामिल हों जैसे पीपल, बरगद, आम, तुलसी, रराइद्याइना, नीम, कनेर, बेल, अमलतास, गुलमोहर, गुड़हल, गुलाब, चादनी आदि लगाये जायें। विद्युत शवदाहगृह में गंगाजल उपलब्ध होना चाहिये जिससे शवों एवं अस्थियों पर गंगाजल छिड़क कर परम्पराओं एवं भावनाओं का आदर हो सके।

४—कीटनाशक सिथेटिक एवं डिटर्जेंट्स से होने वाले प्रदूषण को रोकने के लिये ऐसे पौधों को उगाया जाए (नीम, करज, पाइरेथ्रम, इण्डियन हार्स चैस्टनर, सहजन, महुआ, रीठा, जंगलजलेबी आदि) जिनसे प्राप्त उत्पाद कीटनाशी डिटर्जेंट्स के रूप में काम कर सकते हैं।

५—भारत में सौर-ऊर्जा की कोई कमी नहीं है। अतः यहाँ सौर-ऊर्जा से चलने वाले उपकरणों को प्रोत्साहन देना चाहिये जिसमें किसी प्रकार का प्रदूषण नहीं होता। इनको अपनाया जा सके इसके लिये आवश्यक है कि इनका गावों और शहरों प्रदर्शन हो और ये कम कीमत एवं आसान किश्तों पर उपलब्ध हों। इनका मुफ्त वाटना भी राष्ट्रीयहित में प्रभावी होगा।

सौर-ऊर्जा के बूल्हे एवं अन्य उपकरण प्रयोग में आने से जनता की ईंधन-लकड़ी पर निर्भरता काफी कम हो सकती है जिससे वृक्षों का कटना रुक सकता है जो वन संरक्षण में प्रभावी होगा जो नितान्त आवश्यक है, यदि हम अगली सदी में आशा और विश्वास के साथ कदम रखना चाहते हैं। आज भूमि अपर्दन में वृद्धि एवं बाढ़ के बढ़ते हुए प्रकोप द्वारा नये २ क्षेत्रों को निगलते जाना, जंगलों का एक बड़े क्षेत्र से अग्धाधुन्ध काट कर समाप्त कर देने का परिणाम है। वनों के अन्य भी बहुत से लाभ हैं।

६—इसी प्रकार ईंधन-लकड़ी के लिये एनर्जी प्लान्टेशंस को प्रोत्साहित करना आवश्यक है। इनमें यूकेलिप्टस, सूबहूल, खैर, बहूल की अन्य किस्में, सिरिस, बेर, नीम, आम, बेल आदि शामिल हैं।

- ७—वैदिक साहित्य एवं पुराणों में ऐसे पौधों का वर्णन मिलता है जैसे कुशा, शैवाल आदि जिनमें पानी को शुद्ध करने की क्षमता बताई गई है। ऐसे पौधों की पहचान एवं सूचीकरण करके शोध द्वारा यह पता लगाना अत्यन्त आवश्यक है कि वे किस सीमा तक प्रदूषित पानी को साफ करने की क्षमता रखते हैं। जिससे उन्हें उपयुक्त स्थानों में लगाने की सिफारिश की जा सके।
- ८—भूमि पर खाली पड़े स्थानों में एवं सड़को के दोनों ओर छायादार, फलदार, औषधीय एवं इमारती लकड़ी वाले वृक्ष लगाये जाये, साथ ही सौन्दर्य की दृष्टि से उपयुक्त स्थानों में सुन्दर फूल वाले पौधे लगाना भी उचित होगा। जैसे— नीम, आम, अर्जुन, हरण, बहेष्ठा, साल, बेल सागौन, शीशम, जामुन, बकायन, पाठल, शहतूत, इमली, पापलर आदि।
- ९—पर्यावरण शिक्षा की महत्ता को देखते हुये सवन्धित साहित्य सरल भाषा में तैयार करना आवश्यक है। समय-समय पर अपने-अपने क्षेत्र में सस्थाये पर्यावरण प्रदर्शनियों का भी आयोजन करें। जनता के प्रतिनिधियों को पर्यावरण अपकर्ष के विभिन्न पहलुओं एवं उनके उपचारविधि से परिचित होना अनिवार्य होना चाहिये। जिससे वे अपने क्षेत्र में जनसाधारण एवं प्रशासन-तंत्र को शिक्षित कर सकें।
- १०—नदियों से नहर निकालते समय इस बात का ध्यान रखा जाये कि नदी में छोड़ा जाने वाला पानी इतना कम न कर दिया जाये जिससे एक छोटा सा नाला भी उसे प्रदूषित कर दे।
- ११—जनसंख्या को सीमित रखने के लिये उचित पग उठाये जायें।

—विजय शंकर

संयोजक, गगः प्रदूषण संगोष्ठी
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
वनस्पति विज्ञान विभाग,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

कांगड़ी ग्राम विकास योजना

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

१९८१ से, जब से विश्वविद्यालय ने कांगड़ी ग्राम विकास कार्यों को अपने हाथ में लिया है, अब तक ग्राम में अनेक सामाजिक-आर्थिक-शैक्षणिक-भवन निर्माण एवं पर्यावरण सम्बन्धी कार्यक्रम सम्पन्न हुये हैं। इन सभी कार्यक्रमों में जहाँ मान्य कुलपति श्री बलभद्रकुमार ठूजा, आई० ए० एस० (अवकाश प्राप्त) प्रेरणा के स्रोत रहे हैं, वहाँ बिजनौर के जिलाधिकारी एवं इनके विकास विभाग के अधिकारियों ने तथा स्टेट बैंक जवालापुर ने इस ग्राम के विकास कार्य में अत्यन्त रुचि ली है और महत्वपूर्ण योगदान किया है। पिछले चार वर्ष में जो विभिन्न विकास कार्यक्रम ग्राम में सम्पन्न हुये हैं, वे इस प्रकार हैं—

१—सड़क निर्माण—

मुख्य सड़क (हरिद्वार-बिजनौर) से गाँव को जोड़ती हुई एवं ग्राम में होती हुई गंगा के तट तक ७११ मीटर लम्बी सड़क का निर्माण। कुल लागत रु० ८६,०००/- आई।

२—निर्बल वर्ग आवास—

पाँच निर्बल वर्ग आवास का निर्माण हुआ। इनके लिए प्रति आवास रु० १६२७/- का अनुदान दिया गया।

३—हरिजन पेयजल कूप—

एक हरिजन पेयजल कूप का निर्माण। इसमें कुल व्यय राशि रु० १७,८४५/- आई है। कूप निर्माण ठीक नहीं हुआ है।

४—बायो गैस—

ग्रामवासियों ने दो बायो गैस प्लान्ट लगाये।

५—शौचालय—

सी०बी०आर०आई० रुड़की ने एक मॉडल-शौचालय विद्यालय परिसर में बनवाया। जिससे ग्रामवासी इस प्रकार के शौचालय अपने निवास में बनवाने के लिए प्रेरित हों।

६—दुकानें—

हरिजनों के लिए चार दुकानों का निर्माण हुआ जिनमें इस समय क्रमशः कपड़े, परचून, नार्ड, कपडा-सिलाई का कार्य चल रहा है। दुकानों के निर्माण पर कुल व्यय रु० ३६,५००/- आया।

७—जनमिलन केन्द्र—

विद्यालय के समीप ही जनमिलन केन्द्र का निर्माण पूर्ण हुआ।

८—ग्राम में एक पक्के चबूतरे का निर्माण हुआ। इसके लिये रोटरी क्लब हरिद्वार ने रु० १०००/- का अनुदान दिया।

९—गोवर्धन शास्त्री स्मृति पुस्तकालय—

ये पुस्तकालय मान्य कुलपति जी के पूज्य पिताजी श्री गोवर्धन शास्त्री, जो स्वामी श्रद्धानन्द जी के समय में विद्यालय के हैडमास्टर थे, की स्मृति में सन् १९८१ में खोला गया। इसका उद्घाटन विश्वविद्यालय के कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र जी ने किया। इसमें १००० से ऊपर पुस्तकें एवं पत्रिकाएँ हैं जिनका ग्रामवासी लाभ उठा रहे हैं। सषड विद्या सभा ट्रस्ट, जयपुर पुस्तकालय के लिये रु० ५००/- प्रतिवर्ष देती है।

१०—प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र—

विश्वविद्यालय ने ग्राम में एक प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र स्थापित किया। प्रयास यह है कि ग्राम में कोई भी व्यक्ति अशिक्षित न रहे।

११—पर्यावरण कार्यक्रम—

गंगा और सिद्धस्रोत से होने वाले भूमि कटाव को रोकने के लिए उपयुक्त वनस्पतियों के रोपण का कार्यक्रम बनाया गया। ये कार्यक्रम अन्य ग्रामों जैसे—अगजीतपुर, गाजीवाली, पीली आदि में भी गंगा समन्वित योजना (भारत सरकार पर्यावरण विभाग) गुरुकुल कागड़ी विश्वविद्यालय की ओर से डा० विजय शर्कर के निदेशन में चलाया जा रहा है। ग्राम में एक पर्यावरण गोष्ठी तथा प्रदर्शनी का कार्यक्रम भी वर्ष १९८३ में किया गया। जुलाई १९८५ में गंगा समन्वित योजना ने अपनी नर्सरी से ग्राम में गंगा-तट पर १००० पौधे लगाये जिससे भूमि कटाव रोका जा सके।

१२—वृक्षारोपण—

डेढ़ एकड़ भूमि में यूकेलिप्टस के पौधे लगाये गये। सेतों के बीच में सूबहूल आदि के वृक्ष लगाने की प्रेरणा ग्रामीणों को दी गई।

१३—सब्जी की खेती—

१९८१ से पूर्व ग्राम में सब्जी की खेती उद्योग के रूप में नहीं होती थी। कागड़ी ग्राम विकास योजना के निदेशक ने ग्रामवासियों को सब्जी की खेती करने के लिये प्रेरित किया। क्योंकि ये ग्राम हरिद्वार शहर के नजदीक पड़ता है, जहाँ सब्जी पूरे वर्ष महंगी रहती है। जिन ग्रामीणों ने इस प्रोग्राम को अपनाया, उन्हें प्रति एकड़ रु० ३६००/- प्रति वर्ष आय में वृद्धि हुई।

१४—ऋण सुविधा—

प्रारम्भ में ग्रामवासी रोजगार के लिये ऋण लेने को उद्यत नहीं होते थे। जब उन्हें इसके लाभ बताये गये तब धीरे-धीरे ग्रामवासी आगे आये और अब तक ग्राम में एक तिहाई परिवारों ने ऋण-सुविधा का लाभ उठाया है। ग्राम में १६० परिवार हैं। इनमें से प्रायः १/३ परिवारों ने ऋण सुविधा का लाभ उठाकर अपनी मासिक आय में ३०० से ४०० रु० तक वृद्धि की जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ।

जिन अनेक रोजगार कार्यक्रमों के लिये ऋण लिये गये हैं, वे इस प्रकार हैं—

अ. भैंस पालन

ब. कृषि कार्य हेतु बैल जोड़ी

स. झोटा बुग्गी / घोड़ा बुग्गी

द. रिविजा

य. प्रोवीजन स्टोर / टी स्टाल

च. गोबर गैस सयंत्र

छ. सार्किल / घोड़ा

ज. नार्ड की दुकान

स्टेट बैंक ज्वालापुर ने लगभग १ लाख रुपये का ऋण दिया है।

१५—ग्राम में भारत एवं विदेश से जिन व्यक्तियों ने जुलाई १९८१ से अब तक ग्राम के विकास कार्यों में रुचि ली और ग्राम में पधारे, और ग्रामवासियों को उत्साहित किया, वे हैं—

सर्वश्री बलराम जाखड़, अध्यक्ष लोक सभा। श्री आर० वैकटरमन, कृषि उत्पादन आयुक्त, उत्तर प्रदेश सरकार। श्री ए०के० नारायण एवं कु०ए०के० अहूजा-डिप्टी सेक्रेटरी, मिनिस्ट्री आफ रुरल डेवलपमेंट एण्ड रिकन्स्ट्रक्शन। श्री अरविन्द वर्मा, आई०ए०एस०, आयुक्त मुरादाबाद मंडल। श्री अनीस असारो, जिलाधिकारी, बिजनौर। श्री दर्शन सिंह वैस, बिजनौर जिला-धिकारी; श्री बीरेन्द्र कुलाधिपति; गुरुकुल कागड़ी; श्री सत्यव्रत, परिदृष्टा गु०का०वि०; श्री सी०जी० फूला साग जापान; श्री सत्यदेव भारद्वाज।

गाँव की जो शक्ल १९८१ में थी वो आज बदली हुई है। ३३% लोगों की आय में रु० ३००-४००/- प्रतिमास की वृद्धि हुई है, गाँव में पक्के मकानों का निर्माण अब होता हुआ दिखाई देता है। मिस्त्रियों को फुरसत नहीं है। अनेक व्यक्ति सूती कपड़े से टेरीकाट पर आ चुके हैं। वे अपने बच्चों को इंगलिश स्कूल में भेजने लगे हैं। जहाँ केवल अनेक परिवारों में केवल दाल से रोटी खायी जाती थी, अब सब्जी प्रारम्भ हो चुकी है। लोगों के रहन-सहन के स्तर में सुधार हुआ है और उनके सोचने-समझने की शक्ति भी तीव्र हुई है।

जिला विजनौर प्रशासन ने ग्रामों की गलियों में खड्का लगाना एवं सम्पर्क-मार्ग को प्लास्टर करना स्वीकार कर लिया है। इसी प्रकार भूमि सुरक्षण विभाग ने ग्रामों को, जिनमें कागड़ी के साथ श्यामपुर, गाजीवाली, पीली आदि सम्मिलित हैं, बाढ़ से बचाने के लिये ठोकरे बनाना (चेक डैम) स्वीकार किया है।

१५ अगस्त १९८५ को मान्य कुलपति जी ने श्यामपुर में कैम्प किया और रात्रि में भी वही रहे। यहाँ ग्रामवासियों से स्थानीय समस्याओं जैसे— बाढ़, जंगली जानवरों से फसल को हानि तथा बिजली के अभाव आदि पर विचार हुआ। इस सम्बन्ध में कुलपति जी ने सम्बन्धित अधिकारियों को लिखा है जिससे इस अचल के ग्रामों को राहत मिल सके। कुलपति जी के साथ के० देशराज, स० मुन्याधिष्ठाता; गंगा समन्वित योजना के श्री ए०पी० रस्तोगी एवं प्रौढ शिक्षा विभाग के श्री मलिक ने भी गाँवों में कैम्प किया। इस अवसर पर श्यामपुर में वृक्षों की पौध भी लगाई गई।

भावी कार्यक्रम

१. रेशम कीट उद्योग
२. कुकुरमुत्ता की खेती
३. सौर ऊर्जा बूल्हा/गोबर गैस प्लान्ट
४. कृषि उत्पादन में वृद्धि योजना
५. सिंचाई के साधनों में वृद्धि
६. भूमि कटाव रोकने की योजना
७. विद्युत सुविधायें प्राप्त कराना
८. ट्राइसेम योजना लागू करना
९. ग्राम में पक्की सड़क
१०. सफाई योजना
११. वृक्षारोपण, फलदार, छायादार, औषधीय एवं भूमिकटाव रोकने वाले पौधे।

—निदेशक : डा० विजय शर्मा
अध्यक्ष, वनस्पति विज्ञान विभाग
मु०का० विश्वविद्यालय।

क्या दिया ? क्या लिया ?

—कुमार हिन्दी

गंगा के डेल्टा पर खड़ा

मैं सोचता हूँ,

मैंने क्या दिया, क्या लिया ?

दिया क्या ?

मल-मूत्र, बलगम, बाल, पसीना,

कुछ श्वास छोड़े, कार्बनडाइआक्साइड पैदा की,

पानी को गदला किया, कागज काले किये ।

लिया ? लिया ही लिया ? लेता ही रहा ।

आक्सीजन ली,

दूध लिया, फल लिये,

शहद लिया, रस लिया—

आँखों से रस लिया,

कानों से रस लिया, नाक से रस लिया,

सब अंगों से रस ही रस लिया,

लिया ही लिया ।

दिया क्या ? लेता ही रहा ।

गंगे, तूने क्या दिया, क्या लिया ?

तूने भी तो धरती को जी-भर कर चूसा,

गङ्गोत्री से लेकर दहाने तक,

राह में पड़ते नदी-नालो का जल बटोरा,

खरबों लोगों की अस्थियाँ बटोरी,

जब-जब तुम्हे कोप आया, हज़ारों गाँव तबाह किये,

जिन्दा लोगो, बच्चियों, स्त्रियों, मवेशियों को अपनी गोद में समेटा,

बुझों-पौधों, फसलों को लपेटा,

और अपने खूनी आँचल का इस तरह रक्तिम शृंगार करते हुए,

अपने को सवारते,

तुम चलती गई, बढ़ती गई,

पिया मिलन को ।

है ! मैं तो तुम्हारी सेवा में प्रतिक्षण हाजिर हूँ ।
 मेरा जैसा चाहो उपयोग करो,
 जैसा चाहो उपभोग करो,
 पर तुम तो काहिल हो, काहिल,
 केवल वाग्बीर हो,
 पन्ने काले करने में माहिर हो,
 ख्याली पुलाव पकाने में दक्ष हो ।
 कहाँ गया वह भगीरथ ?
 जो दुर्गम पहाड़ काट कर,
 स्वर्ग से मेरा डोला उठा लाया,
 मेरा उपयोग करने के लिये,
 मेरा उपभोग करने के लिये ।
 यहाँ तो बस एक ही हुआ भगीरथ !
 क्या तुम उसकी सन्तान हो ?
 तो फिर सोचो, तुमने
 क्या दिया ? क्या लिया ? क्या किया ?

रूम कूलर

—हरिसचन्द्र प्रोवर
रीडर एवं अध्यक्ष
भौतिक विज्ञान विभाग

गरमी के दिनों में घरती सूरज की धूप से तपती रहती है, हवा बहुत गरम हो जाती है और गरमी के कारण लोगों का बुरा हाल हो जाता है। पहले भीषण गरमी से बचने के लिए लोग पंखों का इस्तेमाल करते थे, लेकिन आजकल पंखों के साथ-साथ कूलरों का इस्तेमाल भी अधिक होने लगा है। कूलर न केवल हमें ठण्डी हवा ही देता है बल्कि कमरे के तापमान को भी कम कर देता है।

एक साधारण रूम कूलर चौरस आकार का होता है, इसे अधिकतर घर या दफ्तर के बाहर की तरफ खुलने वाली खिड़की में इस तरह लगाया जाता है कि बाहर की हवा सीधी भीतर न आ सके।

कूलर के भीतरी हिस्से में दायें, बायें और पीछे अर्थात् तीन तरफ खस के परदे लगे होते हैं जिनके ऊपर की ओर नाली लगी होती है। इन नालियों में छोटे-छोटे छेद बने होते हैं, जिनसे गिरने वाले पानी से परदे भीगे रहते हैं। कूलर के अन्दर पानी का पम्प लगा होता है जो पानी को तीनों नालियों में पहुँचाता है।

कूलर के नीचे के हिस्से में पानी भरने के लिए टकी होती है। इस टकी के एक कोने में फ्लोट वाल्व लगा होता है जिससे टकी की क्षमता के अनुसार उसमें पानी भर जाता है और यह वाल्व अपने आप बन्द हो जाता है।

कूलर के सामने के हिस्से में लोहे की ग्रिल लगी रहती है। इस ग्रिल को सुविधानुसार ऊपर-नीचे या दायें-बायें किया जा सकता है। इस ग्रिल के पीछे एक्जॉस्ट फैन लगा होता है। यह एक्जॉस्ट फैन हवा को भीतर खींचने का काम करता है।

कुछ कूलरों में पंखे और पम्प का खटका अलग-अलग होता है जबकि कुछ कूलरों में दोनों कामों के लिए एक ही खटका होता है।

जब हम पम्प का खटका खोलते हैं तो पानी टकी में से खस के परदों के ऊपर लगी नालियों में पहुँचने लगता है। उन नालियों में बने छेदों में से वह पानी परदों पर गिरने लगता है जिससे वे नम हो जाते हैं। फिर पखे का खटका खोला जाता है, पंखा बाहर की गरम हवा को अपनी ओर खींचने लगता है। वह गरम हवा खस के परदों में से होकर भीतर आती है। परदों के नम होने के कारण इनमें से भीतर आने वाली गरम हवा ठंडी हो जाती है। यह ठंडी हवा सारे कमरे में फैल जाती है। इस प्रकार हमें गरमी से छुटकारा मिल जाता है।

टकी को कम से कम सप्ताह में एक बार जरूर साफ कर देना चाहिए। बरना पानी में बढ़तू तो फैल ही जाती है, साथ ही मच्छर भी हो जाते हैं जिनसे बीमारी होने का डर रहता है। गरमी का मौसम बीत जाने के बाद कूलर के सभी हिस्सों, खास तौर पर टकी और पखे को अच्छी तरह साफ करके रखना चाहिए।

साल में एक बार कूलर पर बाहर और अन्दर से पेन्ट भी कर देना चाहिए, इससे कूलर की टकी में जग लगने का खतरा नहीं रहता।

कृषि व वानिकी में हितकारी मिट्टी के सूक्ष्म जीव

डा० पुरुषोत्तम कौशिक

वनस्पति विज्ञान विभाग

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

अनेक प्रकार के सूक्ष्म जीव भूमि की ऊपरी सतह में रहते हैं, जैसे— बैक्टीरिया, एक्टीनोमाइसीटीज, कवक, शैवाल व प्रोटोजान्ज। बैक्टीरिया की अनेक प्रकार की किस्में जैसे आटोट्रोफिक, जो अपना भोजन स्वयं तैयार करते हैं, हेटरोट्रोफिक जो अपना भोजन मृत, सड़े-गले पदार्थों से प्राप्त करते हैं। मीजो-फाइलज जो सामान्य तापक्रम यानि $25-40^{\circ}\text{C}$ तक में मिलते हैं, थर्मोफाइलज जो उच्च तापक्रम यानि 50°C से ऊपर मिलते हैं। साइक्रोफाइलज जो शून्य तापक्रम पर मिलते हैं। इनमें से कुछ सेल्युलोज पर निर्वाह करते हैं, कुछ सल्फर को आक्सीडाइज करते हैं और प्रोटीन्ज को ह्यूम कर सकते हैं। कुछ नाइट्रोजन को फिक्स कर सकते हैं। भूमि में पाई जाने वाली एक्टीनोमाइसीटीज की मुख्य जातियाँ नोकार्डिया, स्ट्रेप्टोमाइसीटीज, माइक्रोमोनोस्पोरा आदि हैं। खेत में हल चलाने के बाद मिट्टी की जो विशेष प्रकार की गन्ध आती है वह एक्टीनोमाइसीटीज नाम के सूक्ष्म जीवों के कारण होती है। ये कई प्रकार के कम्प्लेक्स रसायन पदार्थों को तोड़ने की क्षमता रखते हैं और इनका खेत व वनों की भूमि को अन्य पौधों को उगाने के योग्य बनाने में बड़ा ही महत्वपूर्ण योगदान है। एक्टीनोमाइसीटीज एन्टीबायोटिक्स बनाने और छोड़ने की भी क्षमता रखते हैं।

कवक की अनेक जातियाँ भी मिट्टी की ऊपरी सतह में निवास करती हैं। कवक वनों में टहनियों, पत्तों व पौधों के अनेक भागों के उत्तक को डिकम्पोज करते हैं। यदि कवक न होते तो खेत में पड़े पौधे और पत्ते सदा के लिए यों के यों पड़े रहते। तेजाबी स्थिति में बैक्टीरिया कार्य करने में असमर्थ होते हैं, कवक वहाँ भी उगते हैं और मृत पौधों के उत्तक को डिकम्पोज करते हैं।

इसके अतिरिक्त भूमि में ब्ल्यू, ग्रीन शैवाल जिन्हें साइनोबैक्टीरिया भी कहते हैं तथा हरे शैवाल व डायरम मिलते हैं। कुछ लाइकन जो शैवाल और

कवक के सहजीवन के परिणामस्वरूप बनते हैं, भी मिट्टी के घरातल पर मिलते हैं।

प्रोटोजोन्स में फलैजलेट्स और अमीबा आदि आते हैं। प्रत्यक्ष रूप में इनका भूमि को उपजाऊ बनाने में कोई महत्वपूर्ण योगदान नहीं है तो भी इनकी उपस्थिति रुचिकर है। ये कुछ बैक्टीरियाज को पूरे का पूरा निगल जाते हैं और भूमि में रहने वाले सूक्ष्म जीवों के इकोसिस्टम को बैलन्स करने में सहायक हैं। क्या ये कुछ अत्यन्त लाभप्रद बैक्टीरियाज को भी खा जाते हैं? इसके विषय में पूर्ण जानकारी नहीं है।

बैक्टेरियल वायरस व प्लान्ट वायरस भी भूमि में होते हैं। बैक्टेरियल वायरस जिन्हें बैक्टेरियोफेज भी कहते हैं, निःसन्देह बैक्टेरियल पापुलेशन की ईकोलोजी को प्रभावित करते हैं। इस विषय में और अधिक जानकारी की आवश्यकता है।

नाइट्रोजन, कार्बन, फास्फोरस, सल्फर व अन्य तत्त्व पृथ्वी पर जीव-धारियों की जीवनलीला को चलाते रखने के लिए अति आवश्यक है। पृथ्वी में इन सबकी निश्चित मात्रा है। ये सूक्ष्म जीव इस प्रकार से इस चक्र को चलायमान रखने में बड़े उपयोगी हैं और इन महत्वपूर्ण तत्त्वों का पुनः-पुनः प्रयोग होता रहता है।

नाइट्रोजन सभी जीवधारियों के शरीर की संरचना में एक आवश्यक तत्व है। यद्यपि वायुमण्डल में इसका २/३ भाग है। पर पौधे और जन्तु इसको इसी रूप में अपने में नहीं समा सकते। सूक्ष्मजीव नाइट्रोजन को फिक्स करने वाले बैक्टीरिया और साईनोबैक्टीरिया वायुमण्डल की इस नाइट्रोजन को फिक्सअप करने की क्षमता रखते हैं। जो बैक्टीरिया वायुमण्डल की नाइट्रोजन को फिक्स कर सकते हैं, वे हैं राइजोबियम, क्लोस्ट्रीडियम, एज़ोटोबैक्टर आदि।

नाइट्रोसोमोनास और नाइट्रोबैक्टर भूमि की अमोनिया को नाइट्रेट्स में बदल सकते हैं। सभी बैक्टीरिया नाइट्रोजन को फिक्स नहीं करते। कुछ बैक्टीरिया तो भूमि के नाइट्रेट्स को अमोनिया में बदल देते हैं, जो वायुमण्डल में व्यर्थ जा सकती है। पर ऐसा आक्सीजन के अभाववाली भूमि, जिसमें पानी आदि खड़ा रहता हो, में होता है। जिस भूमि में प्रायः हल चलाया जाता है, ऐसा नहीं होता। क्योंकि हल चलाने से भूमि का एरियेशन होता रहता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि कई प्रकार के सूक्ष्मजीव वायुमण्डल की नाइट्रोजन को फिक्सअप कर सकते हैं। वायुमण्डल की नाइट्रोजन को नाइट्रोजन के योगिक में बदलने की प्रक्रिया को नाइट्रोजन फिक्सेशन कहते हैं।

इनमें दो प्रकार के सूक्ष्मजीव आते हैं—एक सहजीवी, दूसरे असहजीवी। सहजीवी सूक्ष्मजीव दाँलो वाले पौधों की जड़ों में रहते हैं। सहजीवी बैक्टीरिया में राइजोबियम मुख्य है। राइजोबियम की विशेष किस्म विशेष प्रकार के लैगूम के पौधे जैसे मूँग, उद, सोयाबीन, चना व मेषी आदि की जड़ों के साथ सहवास स्थापित करते हैं।

इसी प्रकार सूक्ष्मजीव कार्बन के चक्र को चलाने का कार्य करते हैं। जैसे सैलूलोज से सैलोबायोज, सैलोबायोज से ग्लूकोज तथा ग्लूकोज को कार्बन डाई आक्साइड, पानी व अन्य पदार्थों में बदलना।

कवकीय सूक्ष्मजीव वनों में उगने वाले वृक्षों की जड़ों के साथ सहजीवन व्यतीत करते हैं। जिसे “माइक्रोराइजा” कहते हैं।

कृत्रिम तरीके से वृक्षों की जातियों को व अन्य फसलों वाले पौधों की जड़ों को लाभकारी कवक से, जो माइक्रोराइजा बनाने की क्षमता रखता है, इनोकुलेट करके हम वानिकी व कृषि के क्षेत्र में काफी लाभ उठाते हैं।

सूक्ष्मजीवों की रक्षा—

प्रायः देखने में आता है कि खेतों में खड़े खरपतवार को व वृक्षों के नीचे पड़े पत्तों को साफ करने के लिए आग लगा दी जाती है। तीव्र आग की ऊष्मा से मिट्टी के काफी और कभी-कभी तो बेचारे सभी सूक्ष्मजीव मारे जाते हैं और वहाँ की मिट्टी निर्धन हो जाती है।

यह भी ध्यान रखा जाये कि कीटनाशक दवाओं व पैस्टीसाईड्स का कम से कम प्रयोग किया जाये। इनसे भी काफी सूक्ष्मजीव मर जाते हैं। अतः हमारा कर्तव्य है कि इनकी रक्षा करे क्योंकि ये भूमि को उपजाऊ बनाये रखने में अत्यन्त उपयोगी हैं।

हिमालय :

पर्यावरणीय समस्याएँ एवं समाधान-१

डॉ० बी० डी० जोशी

प्रिंसिपल इन्वेस्टीगेटर—हिमालय शोध योजना
जन्तु विज्ञान विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

हिमालय का पर्वतीय क्षेत्र हमारे देश के उत्तर-पूर्व में लगभग २५०० किलोमीटर लम्बा और औसतन २००-५०० किमी० चौड़ा एक विशिष्ट भौगोलिक रचना में विस्तृत है। भूगर्भशास्त्रियों की मान्यता के अनुसार हिमालय की पर्वत-शृंखला पृथ्वी की सबसे नवीनतम तथा युवा रचना है। आज से लाखों वर्ष पूर्व जब इस धरती के कुछ महाद्वीपीय भाग अलग होकर उत्तर दिशा की ओर बढ़ने लगे, तब अफ्रीका महाद्वीप तथा मध्यपूर्व से लगा एशिया का भूभाग मंगोलिया के दक्षिण भाग से आ टकराया था। इस टक्कर के फलस्वरूप तथा पृथ्वी के गर्भ की हलचलो के सहयोग से हिमालय शृंखला का जन्म हुआ। ऐसा माना जाता है कि आज जहाँ हिमालय की शृंखलाएँ विद्यमान हैं, उस क्षेत्र में कभी “टैथिस” नाम का सागर लहराता था और इसके दक्षिण का भाग ‘गोडवाना’ भूभाग के नाम से जाना जाता रहा है। लाखों वर्षों की भौगोलिक, भू-गर्भिक तथा प्राकृतिक जलवायु की कोटिश. सहक्रियाओं के बाद हिमालय में वनस्पतिक ससार की रचना संभव हुई। प्रकृति को हिमालय की इन विशाल वन-शृंखलाओं के योग्य भूमि तैयार करने में ही लाखों वर्षों का समय लग गया। मानव तथा उसके पूर्वजों का तो तब जन्म भी नहीं हुआ होगा।

हिमालय का अधिकतर भू-भाग रेतीली तथा आग्नेय चट्टान-शिलाओं से निर्मित है। एक समय रहा होगा इन चट्टानों की पर्वत-शृंखलाएँ पूर्णतः नग्न और किसी भी प्रकार की वनस्पति से विहीन रही होगी। यह जानकर एक अदभुत आश्चर्य ही होता है कि चट्टानों को घीरे-रे विदीर्ण कर उन्हें भूमि के पोषक तत्वों में बदलने के कार्य में भी मुख्यतः अत्यन्त उपेक्षित सूक्ष्म जीवाणुओं ‘लाइकेन्स, ब्रायोफाइट्स और रेडिफाइट्स’ जैसी सरलतम वनस्पतियों का हाथ रहा है। आज जो फल और पुष्पधारी वृक्षों के विशाल वन हमें देखने को मिलते हैं, उनके योग्य भूमि और जलवायु बनाने का श्रेय पौधों की उसी नन्ही दुनियाँ

को जाता है, और यह भी एक अद्भुतता रही है कि उस समय तक जन्तुओं का कहीं नामोनिजान तक नहीं रहा होगा।

वन-वोहन का प्रारम्भ—

आज पिछले लगभग २०० सालों से मानव, जो स्वयं को प्रकृति की श्रेष्ठतम रचना कहते हुए नहीं थकता, इन वनों के दोहन में इस तरह से व्यग्र है जैसे कि दुर्योधन अपनी पूरी शक्ति से मानों द्रोपदी को निर्वस्त्र करना चाहता हो। यह माना जाता है कि भारतीय सस्कृति की वैदिक-परम्पराओं के अनुसार वृक्षों से, पादपों से बिना प्रयोजन एक पत्ता भी तोड़ना पाप था। हमारा वैदिक साहित्य यहाँ तक आदेश देता है कि सूर्योदय से पूर्व तथा सूर्यास्त के पश्चात् प्रयोजनार्थ भी पुष्प न तोड़े जायें, और इतिहास इस बात का साक्षी है कि इन वैदिक परम्पराओं का निर्वाह आज से लगभग १५०० वर्ष पूर्व तक तो अत्यन्त निष्ठा एव श्रद्धापूर्वक होता रहा। मध्यकालीन भारत और उसके बाद मुगल-काल की साम्राज्यशाही ने भी वन संरक्षण, वृक्षारोपण, उद्यान-निर्माण, चारागाहों का संरक्षण, आश्रय के लिए वन-विहारों के संरक्षण को अपने राज्यतन्त्र का एक अविभाज्य अंग माना। कश्मीर से कन्याकुमारी तक उक्त काल में अत्यन्त रमणीय उद्यानों और वनस्पतियों का विकास हुआ। यहाँ यह बताना उचित होगा कि भारतवर्ष के वनों पर आक्रमण आज से लगभग ३००-३५० वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ जब ब्रिटेन को साम्राज्यविस्तार के साथ-साथ जहाजों के निर्माण तथा भवन सामग्री के उद्योग के लिए ओक के वृक्षों की कमी होने लगी। तब ब्रिटेन का ध्यान भारत के अनछुए विशाल वनभण्डार की ओर गया। सर्वप्रथम मलाबार पर्वत-शृङ्खलाओं के, जो सागर के समीप थी, सागौन वनों पर बलात्कार शुरू हुए। भारत में ब्रितानी साम्राज्य का प्रभुत्व बढ़ता गया और योरोप में जब औद्योगिक क्रांति का पूर्वसंध्यकाल था, तो भारत की वनसम्पदा की छूट दक्षिण के वनों से होती हुई उत्तर के हिमालय तक जा पहुँची।

हिमालय मुख्यतः चीड़, देवदार और ओक (बाँज) के वृक्षों का अक्षय भण्डार प्रतीत होता था। ब्रितानी साम्राज्य को भारत में अपने साम्राज्य विस्तार हेतु ही नहीं अपितु योरोप के औद्योगीकरण के लिए तथा रेलवे स्लीपरों के लिए चीड़ और साल के वृक्षों की अत्यधिक आवश्यकता हुई, जो निरन्तर बढ़ती रही और हिमालय क्षेत्र नग्न होते चले गये। इसके साथ-साथ ही तारपीन के लिए चीड़ के वृक्षों से सीसा निकाला जाने लगा, तब तो मानों बीमार होते मरीज से बार-बार रक्तदान लिया जाने लगा। यह अत्यन्त दुःखद ऐतिहासिक विडम्बना है कि हिमालय के वन, जो आज से २०० वर्ष पूर्व प्रायः ६० से ७०% क्षेत्र को आच्छादित किए हुए थे, इस शताब्दी के आरम्भ में यानी आज से ८०-८५ वर्ष पूर्व लगभग ६५ प्रतिशत और स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय अर्थात् आज से

४० वर्ष पूर्व ३५ से ४० प्रतिशत रह गये। आज स्थिति इतनी दयनीय हो चुकी है कि हिमालयी वनक्षेत्र मुख्यरूप से उत्तर-पश्चिम हिमालय भू-भाग में, जिसमें कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड तथा नेपाल का भी कुछ भाग आता है, वनों का क्षेत्र मात्र १५ से २०% के मध्य रह गया है।

हिमालय के वन हमें केवल लकड़ी, चारा, फल और औषधियों की वन-सम्पदा ही नहीं देते, वरन उत्तरभारत के लगभग सनस्त कृषिक्षेत्र को जैविक-पोषक तत्व तथा पानी की निरन्तर उपलब्धि भी कराते हैं।

हिमालय के वनों की स्थिति—

आज हम हिमालय के किसी भी क्षेत्र में चले जाये, तो सरकारी संरक्षण-तन्त्र तथा एक तथाकथित वैज्ञानिक पद्धति के वनप्रबन्ध तथा वनदोहन की नीति के बावजूद भी हिमालय का हरा आंचल तार-तार होता जा रहा है। उत्तराखण्ड के सात पर्वतीय जिलों की स्थिति तो इतनी दयनीय और कुरूप हो चुकी है कि हम जैसे लोग, जो इन घाटियों को निरन्तर बिगत ३०-४० वर्षों से देखते रहे हैं, आज की स्थिति को देखकर रुआसे हो उठते ह या धिनाने लगते हैं। उत्तराखण्ड के वनों का विनाश तो इतनी तेजी से हो रहा है कि मानी कही कोई वनविनाश की नीति चलाई जा रही हो। बिगत ५० वर्षों में इन वनों पर निम्नलिखित कारणों से अत्यधिक बोस आ पड़ा है—

- १—रेलवे निर्माण हेतु स्लीपरो की आवश्यकता।
- २—कागज, प्लाई और कृत्रिमवस्त्र उद्योग हेतु जंगलों का कटान।
- ३—तारपीन तेल हेतु लीसा-दोहन।
- ४—अनेक प्रकार के उद्योगों में भवननिर्माण हेतु टिम्बर की आवश्यकता।
- ५—जनसंख्या विस्फोट से बढ़ते परिवारों के आवास तथा भोजन के लिए योग्य भूमि हेतु वनों का कटाव।
- ६—पर्यटन तथा उद्योग विकास की मूल आवश्यकता—सड़कों के निर्माण हेतु वनों तथा पर्वत-शृंखलाओं का कटाव।
- ७—मिश्रित वनों का धीरे-२ समाप्त होना और एक ही जाति के वृक्षों का रोपण अभियान।
- ८—अनेक प्रकार के निर्माण कार्यों में डायनामाइट्स का अन्धाधुन्ध प्रयोग।
- ९—जल-विद्युत परियोजनाओं से उत्पन्न पर्यावरण असंतुलन।
- १०—चारागाहों का कृषि में प्रयोग, फलस्वरूप पालतू पशुओं के चारे हेतु वनों पर दबाव।

११—बढ़ती हुई जनसंख्या द्वारा घटते वनों से ईंधन ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वनविनाश के ११ प्रमुख कारण हैं, लेकिन वन-संरक्षण तथा वनसम्पदा के विस्तार हेतु कहीं भी सुदृढ़, ईमानदार तथा कुशल नीति नहीं अपनाई जा रही है ।

विगत दस वर्षों से उत्तराखण्ड के ज्ञानसू, उत्तरकाशी, टिहरी, बागेश्वर, धारचुला, ढबराणी तथा पिथौरागढ़ के अनेक क्षेत्रों में वृहत् भू-स्खलन की घटनाएँ निरन्तर बढ़ती जा रही हैं, और इन्हीं के साथ बढ़ रही है उत्तर-भारत के मैदानी क्षेत्रों में बाढ़ की विभीषिकाएँ ।

लीसा-दोहन के अभिशाप—

हिमालय के अधिकतर क्षेत्रों में चीड़ के वृक्षों का वृहद्तम क्षेत्र फैला हुआ था जो अब तेजी से घटता जा रहा है । इसका एक मुख्य कारण तो रहा है चीड़ के वृक्षों का असमय और कम उम्र में कटान । सन् १९१० के आस-पास वनसंरक्षण नीति के अन्तर्गत एक नियम बनाया गया था कि चीड़ के वृक्ष १२०-१४० वर्ष की आयु के उपरान्त ही काटे जाएँ । यह नियम संभवतः इस शती के दूसरे एवं तीसरे दशक में कुछ ढीले किए किये और ८०-१०० वर्ष की आयु के चीड़ भी कटने लगे । लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि स्वतंत्र भारत में जब चाहो चीड़ काट लो ।

चीड़ के वनों का सर्वाधिक विनाश अगर हो रहा है तो लीसा-दोहन के फलस्वरूप । लगभग पूरे हिमालय की घाटियों में सरकारी, गैर सरकारी और अवैध रूप से लीसा-दोहन का कार्य बढ़ता ही जा रहा है । निकट के ही उत्तरा-खण्ड के किसी भी पर्वतीय क्षेत्र में जाकर कोई भी देख सकता है कि कच्ची उम्र के चीड़ लीसा-दोहन हेतु घायल कर दिए गये हैं । मध्य आयु के चीड़ के वृक्ष, जिन्हें एक-दो वर्ष के दोहन के पश्चात् कुछ आराम देना चाहिए, उन्हें पुनः-पुनः घायल किया जा रहा है, फलस्वरूप चीड़ के वनों को ऐसी क्षति पहुँच रही है जिसकी पूर्ति आगामी हजारों वर्षों तक संभव नहीं है—

१—चीड़ के वृक्षों की बीज उत्पन्न करने की क्षमता निरन्तर कम होती जा रही है ।

२—बीजों में उगने की शक्ति निरन्तर क्षीण होती जा रही है ।

३—लीसा निकले चीड़ वृक्षों की रोग तथा कीटप्रतिरोधक क्षमता कम होती जा रही है ।

४—लीसा-दोहन के फलस्वरूप चीड़ के वृक्षों की बाढ़ (वृद्धि) रुक रही है ।

५—वनो में आग लगने की घटनाएँ बढ़ने लगी हैं ।

६—जो वन हजारों साल से स्थिर खड़े थे, लीसा-दोहन के बाद इतने कमजोर हो गये हैं कि थोड़े से वायु-वेग से ही चीड़ के वृक्ष धराशायी हो जाते हैं ।
विगत ५ वर्षों में उत्तराखण्ड के कई क्षेत्रों में ऐसी स्थिति आ गई थी कि चीड़ के लाखों वृक्ष धराशायी हो गये ।

७—लीसा निकाली हुई चीड़ की लकड़ी की ईंधन-क्षमता एवं उद्योग-क्षमता में भी कमी आई है ।

८—चीड़ के बीजों की प्रजननशक्ति में कमी की वजह से चीड़ के वनों का प्राकृतिक विकास और विस्तार कम होता जा रहा है ।

इस तरह हम देखते हैं कि मात्र एक लीसा-दोहन पर्यावरण को कितनी ही तरह से क्षतिग्रस्त कर रहा है ।

औद्योगीकरण का प्रभाव—

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारे देश में भी विकास के चतुर्मुखी आयामों में निरन्तर वृद्धि होती रही है । जहाँ किसी भी प्रकार के उद्योगों की स्थापना में पर्वतीय क्षेत्र उपेक्षित रहे, वही दूसरी ओर देश के दूर-दराज भागों में खुलते-बढ़ते सैकड़ों प्रकार के उद्योगों हेतु हिमालय की वन-सम्पदा का अन्धाधुन्ध निर्यात होता रहा है ।

उत्तराखण्ड के वन, जहाँ दो दशक पूर्व देवदार, भोज और बाज के गहन वन थे, आज नग्नप्राय से हो चले हैं । उत्तराखण्ड का ओक तो ब्रितानियों को भी बहुत पसन्द आया था । इसी तरह तुन, रीठा, साल, पावर के विशाल वृक्षों को भी लगभग इतिथी हो चले हैं । चीड़ों पत्तियों वाले सभी वृक्ष, न केवल बहुमूल्य इमारती लकड़ियों के भण्डार थे, अपितु समस्त उत्तरभारत को एक सौम्य और समयानुकूल जलवायु प्रदान करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे । इसके अतिरिक्त इन पेड़ों की पत्तियाँ प्रतिवर्ष गिर-सड़ कर, न केवल अपने वनों को, अपितु वर्षाकाल में माध्यम से प्रायः पूरी गंगा-जमुना के दोआब को प्रतिवर्ष बहुमूल्य पोषकतत्वों से पूरित करती रहती थी ।

मिश्रित वनों द्वारा पर्यावरण संतुलन—

पिछले लगभग तीन दशकों में हमने पाया कि हिमालय के हजारों वर्ष पुराने वन जब तेजी से कटते चले गये और सरकार के वनतंत्र को यह समझ आने लगा कि उसकी ध्रुव अफसरनाही और जंगल के ठेकेदारों की साठ-गाठ से होने वाली हानि, साथ ही वन-विभाग से सरकार को होने वाली आय के स्रोत

सूखते जा रहे हैं, तब जल्दबाजी में लगभग सम्पूर्ण पर्वतीय क्षेत्रों में ही, न केवल चीड़ के मोनोकल्चर को प्रोत्साहन दिया जाने लगा, अपितु जलवायु की प्रति-कूलता के बावजूद हिमालय की तराइयों में सदाबहार मिश्रित वनों के स्थान पर यूकलिप्टिस के कृत्रिम वन पोषित होते चले गये।

मिश्रित वनों द्वारा पर्यावरण का सतुलन इतनी सहजता से होता रहता है कि हमारा सारा किताबी वैज्ञानिक-ज्ञान धरा रह जाता है। चौड़ी पत्तियों वाले ये वृक्ष मुख्यतः निम्न रूप से पर्यावरण को विशेष लाभ पहुँचाते हैं—

- १—मध्यम गति से बढ़ने की वजह से जमीन से धीरे-धीरे जल तथा पोषक तत्वों का चूषण करते हैं। इससे जमीन की उपजाऊ शक्ति पर कुप्रभाव नहीं पड़ता।
- २—चौड़ी पत्तियों और घनी शाखाओं के योग से तोड़ वर्षा की बौछारों को भूमि पर टकराने से रोकते हैं, अतः पानी का काफ़ी भाग पत्तियों, टहनियों और तने के माध्यम से धीमे-धीमे वनों की भू-सतह तक पहुँचता है। इस क्रिया के फलस्वरूप न तो बरसाती बौछारों को सीधे-से भूमि अपरदन का अवसर मिलता है और न ही पानी के बहाव से होने वाले कटाव की समस्या आती है।
- ३—मिश्रित वन अपनी पत्तियों से उत्पन्न खाद के माध्यम से परस्पर दूसरी जातीयों के वृक्षों की पोषण आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं जो कि मोनो-कल्चर में सम्भव नहीं है। इस तरह भूमि की उर्वराशक्ति का ह्रास नहीं होने पाता।
- ४—मिश्रित वन पर्यावरण विज्ञान की भाषा और आवश्यकता के अनुकूल वनों में न केवल वनस्पति वर्ग को अपितु विभिन्न प्रकार के जन्तुओं को भी सहजीवन की सुविधाएँ प्रदान करता है, जो कि वन-सम्पदा की प्राकृतिक वृद्धि के लिए अत्यन्त अनिवार्य है।
- ५—मिश्रित वन वायुमण्डल से अधिक कार्बनडाइआक्साइड लेकर वातावरण को और भी आक्सीजन और नमी प्रदान करते हैं।
- ६—मिश्रित वन एक ऐसा पर्यावरणीय सतुलन पैदा करते हैं जिससे इनके नीचे घीमी धूप और घीमी छांव तथा घीमे-पहुँचने वाले मेह की मुलभता से संकड़ों प्रकार की वनस्पति औषधियाँ, बेल-झूटे पनप पाते हैं। मोनोकल्चर वाले वन इस दृष्टि से प्रायः पूर्णतः अनुपयुक्त होते हैं।
- ७—मिश्रित वनों की सघनता वायु के प्रचण्ड वेग को रोककर आंधी-तूफानों को आने से रोकती है।

८—मिश्रित वन, वन्य जन्तुओं के लिए प्राकृतिक अभयारण्य होते हैं जहाँ प्रत्येक प्राणी पर्यावरण के भोजनचक्र से पूर्णतः सतुष्ट होता है और उसकी समस्त आवश्यकताएँ सहजता से पूर्ण होती रहती हैं। यह सहज ही देखा जा सकता है कि ओक, बुस्स, पागर, सागौन, साल, तुन आदि के वृक्ष स्वयं में ही एक नन्ही-सी दुनियाँ बसा लेते हैं, जबकि चीड़, देवदार या यूकलिप्टिस के वृक्ष तथा वन प्रायः एकाकी से होते हैं। न तो ये अपने नीचे अन्य वनस्पतियों को उगने-बढ़ने के योग्य वातावरण देते हैं और न ही विभिन्न प्रकार के पशुपक्षियों एवं अन्य जन्तुओं को आकर्षित करते हैं। वन्य जन्तुओं के विकास एवं प्रसार के लिए यह एक अत्यन्त विषम स्थिति है।

९—मिश्रित वन अपनी घनी छाया की वजह से वन-पर्वतों की भूमि से वाष्पन को रोकते हैं जिससे भूमिगत जलाशयों में पानी की कमी नहीं होने पाती।

१०—सघन वन बाढ़ की विभीषिकाओं पर भी नियंत्रण रखते हैं।

पर्यटन का पर्वतीय पर्यावरण पर प्रभाव—

आज पर्यटन अब एक शौक ही नहीं अपितु एक बहुत महंगा और कठिन उद्योग बन चुका है। निश्चय ही पर्यटन के कई सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक लाभ हैं, लेकिन ज्यों-त्यों पर्यटन उद्योग बढ़ता जा रहा है, पर्यावरण पर इसके दूषित प्रभाव भी बढ़ते जा रहे हैं। उदाहरण के लिए उत्तराखण्ड के पवित्र तीर्थस्थलों में गंगा, यमुना तथा सहायक नदियों का जल, जो अत्यन्त निर्मल तथा पवित्र हुआ करता था, अब अपने मूल से ही पर्यटकों के मल-मूत्र, मादक द्रव्यों के खाली डिब्बे अथवा बोतलों की बहुलता, प्लास्टिक तथा टिन के लिकाफों तथा डिब्बों से घन-तत्र दूषित होता रहता है।

इसी तरह पर्यटन उद्योग हेतु हिमालय की घाटियों में सड़कों, पर्यटक आवासगृहों, होटलों तथा सरकारी विभागों हेतु भवनों का जाल-सा बिछता जा रहा है। इन सब आवश्यकताओं के लिए जिस अनुपात में वन कटते हैं और पर्यावरण दूषित होता है, पर्यटन द्वारा अर्जित लाभ कुछ भी महत्व नहीं रखता। इससे भी अधिक दुःखद स्थिति होती है जब पर्यटक बिना वजह ही दुर्लभ वनस्पतियों, फूलों एवं लताओं को खेल-खेल में नोचते-उखाड़ते हैं।

यह महसूस किया जा रहा है कि अनेक बहुमूल्य जन्तु, हिमालय की घाटियाँ ही जिनका घर रहा है, धीरे-२ समाप्त होते जा रहे हैं। जैसे-हिमालयन पण्डा, भालू, घुरङ, तीतर और कस्तूरी मृग। अब कस्तूरी मृग का ही जिक्र करें तो यह पाया गया है कि इसकी प्रजननशक्ति में भी कमी आई है। यद्यपि सरकार ने पिथौरागढ़, अल्मोड़ा एवं चमोली जनपदों में कस्तूरी मृग के लिए कुछ मृग

विहार निश्चित कर दिए हैं। लेकिन इससे मृगों की जनसंख्या में कोई आशातीत वृद्धि नहीं हो पाई, अपितु घट ही गई। क्योंकि बुरुस, जो हिमालय की घाटियों का एक सुन्दरतम पुष्प-वृक्ष था, धीरे-२ समाप्त होता जा रहा है और यही कस्तूरी मृग का एक प्रिय और आवश्यक भोजन भी रहा है।

पर्यटन विकास के साथ २ हिमालय की गहराइयों तक डीजल और पेट्रोल के वाहन पहुँच चुके हैं। जहाँ वातावरण को स्वच्छ करने वाले वन समाप्त होते जा रहे हैं वहाँ वातावरण को जहरीला बनाने वाले वाहन बढ़ते ही जा रहे हैं। पर्यटकों की बढ़ती संख्या, अधिक मात्रा में जलते ईंधन से उत्पन्न ऊष्मा और कार्बनडाइऑक्साइड और तेजी से घटती वनस्पतियाँ हिमालय की जलवायु को गर्म करती जा रही हैं। परिणाम—शुष्क होती जलवायु, वर्षा एवं बर्फ का अभाव, ग्लेशियर्स का पीछे खिसकना एवं भूमिक्षरण तथा बढ़ती बाढ़ विभीषिकाएँ। पर्यटन व्यवसाय की वजह से ही गंगोत्री और गोमुख के बीच के दुर्लभ भोज वृक्षों का लगभग सफाया हो गया है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि दक्षिण एशिया में हिमालय की बद्री-कंदार तथा गंगोत्री घाटियाँ ही भोजवृक्षों को अनुकूल जलवायु एवं भौगोलिक पर्यावरण प्रदान करती हैं।

(क्रमशः....)

शैवाल से खाद

डा० अरुण आर्य
वनस्पति विज्ञान विभाग
गुरुकुल कागडी वि० वि०, हरिद्वार

जन-साधारण के लिए शैवाल या कोई लगभग गंदे एवम् अनावश्यक वर्ग के पौधे हैं जो हर प्रकार के घुणित स्थलों पर उगते हैं तथा जिन्हें वह पौधे कहने में भी हिचकिचाता है। यद्यपि यह सच ही है कि न हमें इनसे सुन्दर, पौष्टिक और स्वादयुक्त फल ही मिलते हैं, न जानवरों के लिए हरा चारा और न ही इनका उपयोग सुन्दरता और सुगन्धयुक्त फूलों के लिए किया जा सकता है। परन्तु फिर भी शैवाल पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाली आदि-वनस्पतियाँ हैं, जिनके नाना रूप मीठे एव खारे जलो में सहजता से दिखाई पड़ते हैं। वर्तमान युग में अनेक वैज्ञानिक-अनुसंधानों द्वारा इनके विविध उपयोग सुझाये गये हैं।

वैज्ञानिकों का मत है कि वातावरण में जब आक्सीजन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध नहीं थी तो सर्वप्रथम नील-हरित-शैवालों का प्रादुर्भाव हुआ। बोनाँय (१९६१) के अनुसार इस समूह के शैवालों का जन्म आक्सीजनरहित वातावरण में हुआ। आज भी अन्य किसी पादप समूह के विपरीत इस कोटि के शैवाल हाइड्रोजन सल्फाइड, गन्धक के अन्य यौगिकों एवं स्वतन्त्र गंधकयुक्त वातावरण में सफलतापूर्वक जीवन व्यतीत कर सकते हैं। ज्वालामुखियों के लावा में भी इनकी वृद्धि और विकास सर्वप्रथम देखी गई है। ये ८०° से ८५° से० तापक्रम पर भी अपना जीवनचक्र सफलतापूर्वक पूरा कर सकने में सक्षम हैं। जहाँल (१९७४) के अनुसार “बिना शैवाल के मानव का विकास एवं उसकी उत्पत्ति संदेहास्पद है।” वस्तुतः बहुधा जीव वैज्ञानिकों का यह मत है कि एककोशीय शैवाल ही बहु-कोशीय जीवधारियों के आदि-वंशज हैं।

इनके द्वारा प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया के फलस्वरूप वातावरण में आक्सीजन की मात्रा बढ़ी, जिसका उपयोग अन्य जन्तुओं तथा वनस्पतियों ने श्वसन क्रिया में किया। वर्तमान काल में भी कुछ वनस्पतियों के मतानुसार वातावरण की लगभग ८० प्रतिशत से अधिक आक्सीजन की मात्रा शैवालों की प्रकाश-

संश्लेषण क्रिया द्वारा प्राप्त होती है। उल्लेखनीय है कि पृथ्वी का तीन-चौथाई भाग पानी से घिरा हुआ है, जिनमें शैवाल ही बहुतायत से उत्पन्न होती है।

नील-हरित शैवाल द्वारा नाइट्रोजन का स्थरीकरण—

प्रयोगों के आधार पर यह ज्ञात हुआ है कि नील-हरित-शैवाल की लगभग ६० प्रजातियाँ वातावरण से नाइट्रोजन संग्रह करने में सक्षम हैं। नाइट्रोजन खाद्यान्न फसलों में रासायनिक खाद के रूप में अनिवार्यतः दिया जाता है। अतः शैवालों की इस क्षमता का कृषि में विशेष महत्त्व है। अपने देश के स्वातिप्राप्त शैवालविद् डा० पी० के० डे (१९३९) ने प्रोफेसर फिट्ज के साथ कार्य करते हुये उनकी लन्दनस्थित प्रयोगशाला में यह सिद्ध कर दिखाया कि भारतवर्ष में धान की फसल में पर्याप्त नत्रजन खाद न दिये जाने पर भी उसकी उपज में कोई विशेष अन्तर नहीं आता। इसका कारण उन्होंने बताया कि धान के खेतों में इतनी अधिक नाइट्रोजन संचय करने वाली नील-हरित-शैवालों की प्रजातियाँ उगती हैं कि उनके द्वारा स्थिर की गई नत्रजन, फसल की समुचित वृद्धि के लिये पर्याप्त होती है। अतएव फसल की उपज भी यथावत बनी रहती है। धनारस हिन्दू वि० वि० के प्रो० रामनगीना सिंह के अनुसार भारत के धान के खेतों में बहुतायत से मिलने वाले नील-हरित-शैवाल ऑलोनिसिरा फर्टिलिसिमा द्वारा सर्वाधिक नत्रजन का संचय होता है।

जापान में प्रो० वातानवे एवं उनके सहयोगियों (१९५१, १९६०, १९७०) ने कई स्थानों पर नील-हरित शैवाले, विशेषकर टोलिपोथ्रिक्स टेनुइस को चार वर्ष तक धान की फसल के साथ उगाकर, इसकी उपज में क्रमशः २, ८, १५ और २० प्रतिशत की वृद्धि रिकार्ड की। इसी प्रकार के प्रयोगों द्वारा रूस में शाटिना ने धान की उपज में १३—२० प्रतिशत और चीन में ले तथा उनके सहयोगियों ने एनाबिना एज़ोटिका नामक शैवाल के प्रयोग द्वारा २४ प्रतिशत की वृद्धि प्राप्त की।

भारतीय धान के खेतों में नाइट्रोजन सन्स्थापित करने वाली कुछ प्रमुख शैवाल प्रजातियाँ हैं—ऑलोनिसिरा, एनाबिना, सिलिन्ड्रोस्परमम्, टालिपोथ्रिक्स, साइटोनिमा, नाॅस्टाक, कैलोथ्रिक्स, ग्लियोट्रिकिया, स्टैजोनिमा इत्यादि। इन शैवालों के द्वारा प्रति हेक्टेयर प्रति मौसम लगभग १५ से ४८ कि०ग्राम नाइट्रोजन भूमि को प्राप्त होता है।

इसके अतिरिक्त शैवाल अन्य वनस्पतियों की तरह कार्बनिक पदार्थ, जैसे फाइटोहार्मोन्स, ऑक्जिन, जिब्रेलिन, अमीनो एसिड, कार्बनिक अम्ल, विटामिन इत्यादि भी उत्पन्न करते हैं जो कि पौधों की चयापचय क्रियाओं को सुधार कर

उनकी वृद्धि और फसल की उपज को बढ़ाते हैं। कुछ परीक्षणों में यह पाया गया कि यदि बीजों को कार्ब के साथ मिलाकर बोया जाय तो बीज पहले की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से उगते हैं (गुप्ता १९६६, गुप्ता एव पाण्डेय १९७८) और उनकी वृद्धि भी अच्छी होती है।

नाइट्रोजन स्थरीकरण में सहायक : हेटेरोसिस्ट

हेटेरोसिस्ट, नील-हरित शैवालो में पायी जाने वाली कुछ विशेष कोशाओं में से एक हैं। इनकी संरचना कार्बिक (वेजिटेटिव) कोशाओं से भिन्न है। ये उनसे आकार में बड़ी, लगभग गोलाकार, अधिक मोटी कोशिका भित्ति वाली एक या दो ध्रुवीय नाइपूल (गाठ) युक्त संरचनाएँ हैं। ये शैवाल की फीतासदृश संरचना के मध्य या एक किनारे पर हो सकती हैं तथा कभी-कभी एक लगातार क्रम में भी पायी जाती हैं।

परमाणु सूक्ष्मदर्शी की मदद से किये गये नवीन अनुसंधानों द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि जब एक कोशा हेटेरोसिस्ट में परिवर्तित होती है तो धीरे-धीरे इसके आकार में वृद्धि होती है। कोशाभित्ति अनेक पतोंयुक्त हो जाती है। अन्तःभित्ति स्टार्चसदृश पदार्थ सेल्यूलोज और बाह्यभित्ति पेक्टिक यीगिकों द्वारा निर्मित होती है। ध्रुवीय क्षेत्रों को छोड़कर सम्पूर्ण कोशा म्यूसिलेज पदार्थ की मोटी तह से घिरी होती है। कैरोटिनायेंड्स के अतिरिक्त प्रकाश-संश्लेषण में सहायक अन्य सभी लवक समाप्त हो जाते हैं। नील-हरित शैवालो की कोशाओं में पाया जाने वाला प्रमुख आहारोत्पादक लवक फाइकोसाइनिन इन कोशाओं में नहीं पाया जाता। नाइट्रोजन स्थरीकरण में सहायक एन्जाइम 'नाइट्रोजिनेज' की इन कोशाओं में उपस्थिति बोक (१९६८) तथा फे एव उनके सहयोगियों (१९६८) द्वारा ज्ञात की गई है।

स्टीवर्ट एव उनके सहयोगियों (१९६९) ने इस बात के निश्चित प्रमाण प्रस्तुत किये कि हेटेरोसिस्ट नाइट्रोजन के संस्थापन में सहायक है। काले एव तल्पासाई (१९६९) ने भी संरचना एवं कार्य की दृष्टि से इन विशेषीकृत कोशाओं को नाइट्रोजन के स्थरीकरण में प्रमुख भूमिका निभाने हेतु सक्षम माना है। ब्रेडली एव कार (१९६६) ने भी उपरोक्त मत व्यक्त किया है, जबकि पोस्टगेट (१९७४) का कहना है कि सूक्ष्म मात्रा में नाइट्रोजन का स्थरीकरण हेटेरोसिस्ट-युक्त प्रजातियों की कार्बिक कोशाओं में भी सम्भव है। यॉट और सिल्वे (१९६९) ने 'मिलयोकेप्सा' नामक नील-हरित-शैवाल में नाइट्रोजिनेज एन्जाइम की उपस्थिति और नाइट्रोजन स्थरीकरण क्रिया देखी। इस प्रकार हमारी यह अब-धारणा कि सिर्फ हेटेरोसिस्टयुक्त शैवाल ही यह विशेष गुण रखते हैं, पूर्ण सत्य

नहीं है। ग्लियोकेप्सा, ओसिलेटोरिया, ट्राइकोडेस्मियम और प्लेक्टोनिमा प्रजातियाँ, जिनमें हेटेरोसिस्ट नहीं पाये जाते, वातावरण से नाइट्रोजन स्थरीकरण में सक्षम हैं।

शैवाल से खाद ?

जो हौ, शैवाल से खाद बहुत ही सरल विधि से बनाई जा सकती है। वैज्ञानिक ढंग से बनाई गई खाद के प्रयोग से २०-३० कि०ग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से नाइट्रोजन का संस्थापन होता है जिससे धान की उपज दो-गुनी, कभी २ तीन-गुनी भी प्राप्त कर सकते हैं। आज, जबकि साधारण कृषकवर्ग के लिए इतनी मंहगी रासायनिक खाद खरीदना उनकी सामर्थ्य के बाहर की बात है, शैवाल से बनी यह खाद बहुत सस्ती होने के कारण उनके लिये वरदानस्वरूप है। इसको किसान थोड़े से मिश्रण (कल्चर) के द्वारा पर्याप्त मात्रा में प्राप्त कर सकते हैं।

अ—खाद बनाने की विधि—

काई की खाद बनाने के लिए विशेष प्रकार की काई की उपजातियों के मिश्रण (जिसमें ऑलोसिरा, हेप्लोसाइफॉन, नास्टाक, एनाबिना, प्लेक्टोनिमा, लिजबिया, माइक्रोसिस्टिस इत्यादि हैं) की आवश्यकता होती है। जिसे किसी प्रशिक्षण केन्द्र, कृषि विश्वविद्यालय से प्राप्त किया जा सकता है। इस कार्य के लिये अप्रैल से जून तक का समय अधिक उपयुक्त है। इसके लिए पानी (तालाबों) के निकट ऐसे खेतों का चुनाव करते हैं जिसमें सूर्य की रोशनी और शुद्ध वायु का अभाव न हो। २० वर्गमीटर की समतल क्यारी बनाकर उसके चारों ओर १५ सेमी० ऊँची मेंढ बाँध देते हैं। अब इस क्यारी में 5½ × 4½ मीटर आकार की पोलीथीन की चादर बराबर करके इस प्रकार बिछाते हैं कि पूरी क्यारी अच्छी प्रकार से ढक जाय और आधा मीटर पोलीथीन की चादर बाहर की ओर लटकती रहे। इसको भली-भाँति ढकने के बाद इसके ऊपर १० सेमी० ऊँची मेंढ चारों ओर और बना देते हैं। इस तैयारी के बाद क्यारी में ४० कि०ग्राम भुरभुरी मिट्टी बराबर से बिछा देते हैं। यदि पोलीथीन की चादर उपलब्ध नहीं है तो उस क्यारी की मिट्टी को ही भुरभुरी और फिर समतल बनाकर काम में ला सकते हैं। अब क्यारी खाद बनाने के लिए तैयार है।

इस तैयार क्यारी में १० से १२ सेमी० पानी भर देते हैं। फिर इसमें १ कि०ग्राम सुपर फास्फेट, १०० ग्राम कार्बोपयूरान ग्रैन्यूल्स, अगर ये उपलब्ध न हों तो इसके स्थान पर १०० ग्राम १० % पी०एच०सी० पूर्ण और २ कि०ग्राम लकड़ी का बुरादा मिलाकर बराबर करके क्यारी में छिड़क देते हैं। तदुपरान्त

क्यारी को समतल करके उसमें भली-भाँति लेवा लगा दिया जाता है। अब इसमें २½ कि०ग्राम नील-हरित शैवाल का मिश्रण बराबर से छिड़क दिया जाता है।

समय-समय पर पानी देते रहते हैं जिससे कि पानी की सतह ५ सेमी० ऊँची रहे। यदि पोलीथीन की चादर बिछाई गई है तो पानी की अधिक आवश्यकता नहीं होती। १० या १५ दिनों के पश्चात् क्यारी में काई भली-भाँति दृष्टिगोचर होने लगती है, इसकी एक मोटी तह जम जाती है। अब इसे पानी की कम आवश्यकता होती है। ३-४ दिनों के बाद काई को खुरचा जा सकता है। लगभग ½ सेमी० की गहराई से खुरपी की मदद द्वारा काई को खुरच लेते हैं। नमी होने से काई अपने-आप उखड़ आती है।

अब सूर्य के प्रकाश में इसे ऐसे ही या बालू के साथ मिलाकर सुखा लिया जाता है। इसे पोलीथीन की थैलियों में भरकर सूखी जगह पर रख लेते हैं। इसे अन्य उर्वरकों से दूर रखना चाहिये। अब यह खाद फसल में डालने के लिये तैयार है। इस प्रकार २½ कि०ग्राम मिश्रण से ३५ किलो खाद तैयार हो जाती है। यह ३ हेक्टेयर खेत के लिये पर्याप्त है। एक मौसम में काई की खाद की एक ही क्यारी में ४ फसलें आसानी से ली जा सकती है।

ब-सावधानियाँ—

- (१) खाद बनाते समय जगह का चुनाव सही ढंग से करना चाहिये। स्थान नम हो, हवादार हो, पर्याप्त मात्रा में धूप मिलती हो और निकट ही पानी की सुविधा भी हो।
- (२) क्यारी की मिट्टी को अच्छी प्रकार से भुरभुरी करके समतल कर लेना चाहिये।
- (३) मिट्टी उपजाऊ हो और कीड़े-मकोड़ों से सुरक्षित हो।
- (४) काई को खुरचते समय भूमि नम होनी चाहिये और ½ सेमी० से अधिक मिट्टी नहीं खुरचनी चाहिये।
- (५) शैवाल की खाद को धूप में भली-भाँति सुखाकर, पोलीथीन की थैलियों में भरना चाहिए।

स-खाद का खेत में प्रयोग—

उपरोक्त विधि से प्राप्त खाद को धान के खेतों में डालने के लिए रोपाई हो जाने तक इन्तजार करना पड़ता है। जब खेत में रोपाई हो जाये, उसके ४-५ दिन पश्चात् १० कि०ग्राम खाद प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़क दी जाती है।

खाद छिड़कते समय करीब ५-६ सेमी० पानी भरा होना चाहिये। यह पानी कम से कम १० दिन तक भरा रहे जिससे काई के पनपने में आसानी रहे।

काई की खाद को अकेले या पूरक खाद के रूप में खेत में प्रयोग किया जा सकता है। लगातार ५-६ वर्षों तक इसका प्रयोग करने से अतिरिक्त रासायनिक खाद डालने की आवश्यकता नहीं रहती और उपज भी बढ़ जाती है।

आज, जबकि रासायनिक खादों के मूल्य आसमान छू रहे हैं, इस प्रकार की जैविक खादों की मदद से कृषि में आशातीत फसल की पैदावार करके हम अपनी खाद्य आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं। शैवाल की खाद और शैवाल के निष्कर्ष (एक्सट्रैक्ट) का उपयोग गेहूँ, मटर, धान एवं मुरजमुखी इत्यादि अन्य फसलों में भी किया जा रहा है और इन फसलों के बीजों के अंकुरण एवं इनकी पैदावार में भी कई गुना वृद्धि प्रयोगों द्वारा ज्ञात की गई है। आज किसानों के मध्य इस प्रकार की जानकारी को फैलाने का दायित्व शिक्षा-संस्थाओं, विश्व-विद्यालयों एवं स्वयंसेवी संस्थाओं को वहन करना चाहिये।



उ० प्र० कृषि उत्पादन आयुक्त श्री आर० बेंकटरमन, बिजनौर के जिलाधिकारी श्री दर्शन सिंह बेन्स से बात करते हुए । दाएँ से श्री बी० एन० श्रीवास्तव, प्रिंसिपल टी० ई० पी०, बिजनौर जिलाधिकारी श्री दर्शन सिंह बेन्स, श्री आर० बेंकटरमन, कृषि उत्पादन आयुक्त उ० प्र० ।



। आर० वेंकटरमन राष्ट्रीय सेवा योजना के विद्यार्थियों से बात करते हुए । डा० बी० डी०
।श्री, प्रोग्राम ऑफिसर रा० से० यो० भी साथ में है ।

“कण्व आश्रम एवं हिमालय-शोध-योजना”

संक्षिप्त परिचय

—डा० बी० डी० जोशी

प्रिंसिपल इन्वेस्टीगेटर

हिमालय शोध योजना

एवं अध्यक्ष, जन्तु विज्ञान विभाग

मानवों की इस धरती पर पर्यावरण संतुलन बनाए रखने में सर्वत्र ही पर्वत-शृंखलाओं का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। हिमालय पर्वत की शृंखला अपने आप में इस धरती की अनन्यतम रचनाओं में से एक है। हिमालय शृंखला का सम्बन्ध पश्चिम में हिन्दुकुश से होता हुआ बर्मा से लगे अरुणाचल तक एक अटूट कड़ी के रूप में लगभग २५०० कि०मी० तक विस्तृत है। इस पर्वत-शृंखला का जन्म आज से लगभग ४००-५०० लाख वर्ष पूर्व हुआ था।

आज मानव अपने विप्लवे होते हुए पर्यावरण के प्रति बहुत अधिक जागरूक एवं संवेदनशील हो चुका है। यह किसी की भी समझ में नहीं आ रहा है कि बिगड़ती स्थितियों को किस तरह सुधारा जाय। वायुमण्डल में आक्सीजन और नमी घटती जा रही है। कार्बनडाइऑक्साइड तथा ताप बढ़ता चला जा रहा है। हमारा देश भी अपनी निर्धनता के बावजूद पर्यावरण-संरक्षण की दिशा में बहुत ही व्यग्रता एवं रुचि से कार्यरत है। इसका श्रेय भारत की भूतपूर्व यशस्वी प्रधान-मंत्री स्वर्गीया श्रीमती इन्दिरा गांधी की जागरूक नीतियों को जाता है कि उनकी अत्यन्त चैतन्य प्रवृत्ति के फलस्वरूप भारत सरकार के पर्यावरण-मन्त्रालय ने हिमालय पर्वतीय पर्यावरण-संरक्षण एवं सुधार हेतु विशेष शोध-योजनाओं हेतु एक अलग विभाग स्थापित किया है।

योजना—

यह अत्यन्त सुखद स्थिति है कि प्रधानमंत्री के रूप में श्री राजीव गांधी हिमालय के पर्यावरण-संरक्षण, गंगा-प्रदूषण निवारण, तथा सम्पूर्ण भारत में ही वृहत वृक्षारोपण के कार्यों में गहन रुचि रखकर हम सबके लिए प्रेरणा के स्रोत बने हुए हैं। इसी शृंखला में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के कुलपति

श्री बलभद्रकुमार हूजा (रिटायर्ड आई० ए० एस०) की सतत् शुभ-प्रेरणा के फल-स्वरूप भारत सरकार के पर्यावरण मंत्रालय ने हमें ६.६८ लाख रुपये की एक बृहत् पर्यावरण सुधार हेतु शोध-योजना स्वीकृत की है। यह अपने आपमें इस क्षेत्र को स्वीकृत हुई प्रथम सबसे बड़ी योजना है।

इस शोध-योजना के अन्तर्गत मुख्य रूप से निम्न कार्य किए जाने हैं :

- १—हिमालय की पर्वतीय घाटियों में विभिन्न प्रकार के वनों की भूमि की उपजाऊ-शक्ति आदि का तुलनात्मक रासायनिक विश्लेषण।
- २—हिमालय शृंखला में बिगड़ते अथवा नष्ट होते पर्यावरण संरक्षण तथा संवर्धन हेतु शोध-कार्य, फील्ड वर्क एवं नये संरक्षण उपायों का सृजन।
- ३—भूमि क्षरण की रोकथाम।
- ४—बाढ़ नियंत्रण सम्बन्धी विभिन्न प्रकार के उपायों का प्रभावी क्षेत्रों में आयोजन।
- ५—वन-वृक्षहीन क्षेत्रों में बृहत् वृक्षारोपण अभियान हेतु शिविरों का आयोजन।
- ६—क्षेत्र में वानिकी एवं उद्यानों के प्रचार एवं प्रसार हेतु नर्सरी की स्थापना।
- ७—यूकेलिप्टिस के वृक्षारोपण से उत्पन्न स्थानीय क्षेत्र की भूमि की उर्वरता, रासायनिक वनावट तथा सम्बद्ध पर्यावरण का तुलनात्मक अध्ययन।
- ८—पर्यावरण की वर्तमान स्थिति के आलोक में भविष्य की योजनाओं तथा आवश्यकताओं का पूर्ण मूल्यांकन।
- ९—पहाड़ी नदियों से उत्पन्न नदी तट के कटाव को रोकने हेतु बंध निर्माण।
- १०—क्षेत्र में पर्यावरण सतुलन के सापेक्ष विभिन्न प्रकार के जीव-जन्तुओं का सर्वेक्षण।
- ११—वन-सम्पदा तथा क्षेत्र की फसलों को क्षति पहुँचाने वाले जीव-जन्तु, विशेषतः कीट-समुदाय का सर्वेक्षण एवं रोकथाम के उपाय।
- १२—सामान्य जनता में पर्यावरण संरक्षण के सम्बन्ध में जागरूकता पैदा करना।

योजना स्थल—

उक्त समस्त कार्य कोटद्वार के निकट महाकवि कालिदास द्वारा वर्णित महर्षि कण्व की तपःआश्रमस्थली के क्षेत्र में किए जायेंगे। कण्व आश्रम का यह क्षेत्र अत्यन्त ही ऐतिहासिक महत्त्व का है, जिसका वर्णन महाभारत के आदिपर्व के “शकुन्तलोपाख्यान” नाम के सर्ग ६९ से ७४ तक पाया जाता है। महाभारत में वर्णित उक्त सन्दर्भ के आधार पर ही महाकवि कालिदास ने अपनी अमर

रचना “अभिज्ञान शाकुन्तलम्” की रचना की थी। तदनुसार महर्षि विश्वामित्र एवं देवांगना मेनका के संयोग से शकुन्तला का जन्म इसी क्षेत्र में हुआ था। महर्षि कण्व (काश्यप) ने मेनका द्वारा त्यक्त सद्यजात शकुन्तला का लालन-पालन पिता की तरह ही किया। कवि कालिदास ने इसी प्रसंग में जब महाराज दुष्यन्त कण्व आश्रम में शकुन्तला से मिलते हैं और तदनन्तर महर्षि कण्व शकुन्तला को पतिगृह के लिए विदा करते हैं—तो कण्व आश्रम की प्राकृतिक सुन्दरता का विलक्षण वर्णन किया। आज के पर्यावरण की दृष्टि से हम यह कह सकते हैं कि हजारों वर्ष पूर्व हमारे ऋषि-मुनियों के प्रकृति-संरक्षण और सम्बर्धन के अपने ऐसे नियम थे जो नियम न रहकर प्रत्येक नर-नारी के दैनिक जीवन का अंग बन चुके थे। जैसे कि राजा दुष्यन्त एक मृग का पीछा करते हुए जब कण्व आश्रम की परिधि में प्रवेश पाते हैं तो उनको सुनने को मिलता है “भो-भो राजन् ! आश्रम मृगोअयम् न हन्तव्यो न हन्तव्यः” और राजा इस अनुशासन को मानता है।

दूसरी ओर कण्व ऋषि को अपने आश्रम की वनस्पतियों से कितना प्रेम था कि स्वयम् शकुन्तला को उन्होंने आश्रम की पुष्प-लताओं की देखभाल का कार्य सौंपा हुआ था। लेकिन शकुन्तला पिता की आज्ञावश नहीं, अपितु वृक्षों को अपने बन्धु समान मानकर उनका सम्मान करती थी। तभी तो उसने कहा “न केवलम् तात नियोग एव, अस्ति मे सोदरस्नेह एतेष”। पुनः शकुन्तला को विदा करते समय महर्षि काश्यप कह उठते हैं—

भो-भो सनिहितास्तपोवनतरवः !

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या

नादत्ते प्रियमण्डनापि भवता स्नेहेन या पल्लवम् ।

आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः

सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ॥

इससे भी अधिक मार्मिक क्षण तब आता है जब शकुन्तला कण्व आश्रम से विदा हो रही होती है तो मृगशावक उसका आँचल पकड़ लेता है, काश्यप कहते हैं—

वत्से !

यस्य त्वया व्रणविरोपणमिद्धं, दीना

तैलं न्यषिच्यत मुने कुञ्जसूचिविद्धे ।

श्यामाकमुष्टिपरिवद्धितको जहाति

सोज्यं न पुत्रकृतकः पदवी मृगस्ते ॥

धन्य थे वे आश्रमवासी, धन्य थी शकुन्तला एवं धन्य थे वे मूक वन्यपशु जो परस्पर एक ही परिवार के भाई-बहनों की तरह रहते थे। तब क्यों-कर न

पर्यावरण और कण्व आश्रम की घाटियाँ अत्यन्त सुन्दर, मोहक एवं स्वास्थ्य-वर्धक रही होंगी। जहाँ आज भी हमारे बच्चों का गुरुकुल आश्रम मालिनी नदी के तट पर अपनी विशिष्टता लिए हुए हमें सहज ही अभिज्ञान शाकुन्तलम् में वर्णित राजा दुष्यन्त तथा शकुन्तला की प्रणयलीला का स्मरण करा देता है।

आज भी अनङ्गप्रिय वसन्त ऋतु के आगमन पर कण्वघाटी अत्यन्त सुन्दर, विहंगम एवं मोहक हो उठती है। और हो भी क्यों न—

द्रुमाः सुपुष्पाः सलिल सपथं,
स्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धिः।
सुखाः प्रदोषा दिवसाश्च रम्याः,
सर्वं प्रिये ! चारुतर वसते ॥

तो ऐसी रही है कण्व आश्रम की प्राकृतिक परम्परा। आज कण्वघाटी के वनक्षेत्र विरलतर होते जा रहे हैं, कालिदास द्वारा वर्णित लतावृक्षादि एवं मृगादि लुप्त होते जा रहे हैं। सुन्दर मालिनी रेत का घाट अथवा बरसाती नदीमात्र रह गई है। और समस्त पर्यावरण अत्यन्त अस्त-व्यस्त नजर आता है। इन्हीं ऐतिहासिक और वर्तमान वास्तविकताओं की पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर ही यह निश्चय किया गया कि हिमालय पर्वतीय पर्यावरण शोध-योजना के अन्तर्गत महर्षि कण्व के गुरुकुल आश्रम की स्थली को ही अपनी योजना के प्रथम चरण का केन्द्र बनाया जाए।

विगत माह में जन्तुविज्ञान विभाग द्वारा कण्व घाटी में स्थित ग्राम पंचायतों के प्रधानों से तथा वहाँ स्थित गुरुकुल विद्यालय के सस्थापक-व्यवस्थापक ब्रह्मचारी श्री विश्वपाल जयन्त जी से सम्पर्क स्थापित कर विचार-विनिमय किया गया है। और हमें विश्वास है कि इन सभी के सहयोग से पर्यावरण सुधार की दिशा में कण्व आश्रम की घाटी और कोटद्वार क्षेत्र में सफलतापूर्वक कार्य किया जा सकेगा।

समाज के लिये गणित की उपयोगिता

—विजयेन्द्र कुमार

रीडर, गणित विभाग

विज्ञान महाविद्यालय,

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

तथा

कु० सरिता रानी

गणित को प्रायः कठिन और नीरस विषय समझा जाता है। यद्यपि वास्तव में ऐसा नहीं है। गणित का अध्ययन करते हुए छात्र प्रायः पूछते हैं कि हम गणित क्यों पढ़ रहे हैं? ऐसा कठिन विषय पढ़ाकर क्यों हमारा समय नष्ट किया जा रहा है? यह हमारे क्या काम आयेगा? प्रस्तुत लेख में इसी प्रकार के प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास किया जा रहा है। वैसे यह विषय अति विस्तृत है। सब उपयोग यहाँ पर देना संभव नहीं है। इन प्रश्नों के उत्तर में यदि यह कहा जाये कि पूरी सभ्यता गणित पर ही आधारित है तो अतिशयोक्ति न होगी। जिन विज्ञानप्रदत्त साधनों का हम प्रयोग करते हैं उन सबके आविष्कारों में उच्च तथा प्रयुक्त गणित का ही उपयोग हुआ है। लेकिन केवल यह कहना सन्तोषजनक नहीं है।

व्यक्ति अपनी बाल्यावस्था में ही आधुनिक गणित के सिद्धान्तों से परिचित होता है। यदि दो बच्चों को अलग-अलग सख्याओं में खिलौने दिये जाते हैं (उदाहरण के लिए एक बच्चे को दो तथा दूसरे को तीन) तब उसे अपने प्रति किये गये अन्याय का आभास हो जाता है। इस आभास का कारण बच्चे के द्वारा अपने तथा दूसरे बच्चे के खिलौनों में एक-एकसंगतता स्थापित करने के कारण होता है। एक-एकसंगतता का एक और उदाहरण देखिये। इसके लिए दो समुच्चयों पर विचार कीजिए।

$N = \{1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10, \dots\}$ तथा

$E = \{2, 4, 6, 8, 10, \dots\}$

क्या इन समुच्चयों में तत्वों की सख्या समान है अथवा असमान। इस प्रश्न का उत्तर गणित की जिस शाखा से प्राप्त होता है उसे आधुनिक गणित कहते हैं तथा एक-

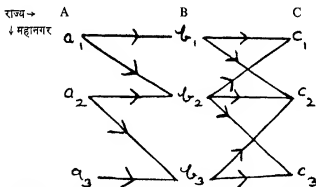
एकसंगतता के आधार पर यह तय करते हैं कि तत्वों की संख्या समान है अथवा असमान। वच्चे इसी एक-एकसंगतता के आधार पर अपने खिलौनों की तुलना दूसरे बच्चों के खिलौनों से करके सन्तुष्ट अथवा असन्तुष्ट होते हैं।

अब यह आवश्यक नहीं रहा कि सब व्यक्ति अच्छा गणित जानते हों। जो व्यक्ति अधिक गणित नहीं जानते वे भी साधारण गणक की सहायता से काम चला सकते हैं। कुछ अन्य उपयोग नीचे लिखे जा रहे हैं। निम्न समस्या पर विचार कीजिए।

A राज्य में तीन महानगर a_1, a_2, a_3 हैं। इसी प्रकार B राज्य में b_1, b_2, b_3 तथा C से c_1, c_2, c_3 ।

a_1 महानगर का b_1 तथा b_3 महानगर से रेल सम्बन्ध है। इसी प्रकार a_2 का b_2 तथा b_3 से, a_3 का b_3 से, इसी प्रकार b_1 का c_1 से तथा c_2 , b_2 का c_1, c_2 तथा c_3 से तथा b_3 का c_2 तथा c_3 से। महानगरों में आपसी रेल सम्बन्धों को ज्ञात कीजिए।

उपरोक्त कथन में दी गयी सूचना को चित्र द्वारा निम्न प्रकार प्रदर्शित किया जा रहा है।



A तथा B राज्यों के रेल सम्बन्धों को मैट्रिक्स की सहायता से निम्न प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है।

$$\begin{array}{c}
 \begin{array}{ccc}
 & b_1 & b_2 & b_3 \\
 \begin{array}{c} a_1 \\ a_2 \\ a_3 \end{array} & \left| \begin{array}{ccc}
 1 & 1 & 0 \\
 0 & 1 & 1 \\
 0 & 0 & 1
 \end{array} \right| & = X \text{ (माना)}
 \end{array}
 \end{array}$$

(दो महानगरों में संबन्ध होने को 1 अंक से तथा न होने को 0 से प्रदर्शित किया गया है।)

इसी प्रकार B तथा C नगरों के संबंधों की मैट्रिक्स निम्न प्रकार बनती है :

$$\begin{matrix} & c_1 & c_2 & c_3 \\ \begin{matrix} b_1 \\ b_2 \\ b_3 \end{matrix} & \begin{vmatrix} 1 & 1 & 0 \\ 1 & 1 & 1 \\ 0 & 1 & 1 \end{vmatrix} \end{matrix} = Y \text{ (माना)}$$

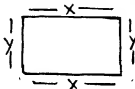
अब A तथा C महानगर के संबंध X तथा Y की गुणन मैट्रिक्स से प्राप्त हो सकते हैं।

$$XY = \begin{vmatrix} 1 & 1 & 0 \\ 0 & 1 & 1 \\ 0 & 0 & 1 \end{vmatrix} \begin{vmatrix} 1 & 1 & 0 \\ 1 & 1 & 1 \\ 0 & 1 & 1 \end{vmatrix} \begin{matrix} a_1 \\ a_2 \\ a_3 \end{matrix} \begin{matrix} c_1 & c_2 & c_3 \\ 2 & 2 & 1 \\ 1 & 2 & 2 \\ 0 & 1 & 1 \end{matrix} = Z$$

परिणाम मैट्रिक्स Z से यह ज्ञात होता है कि महानगर a_3 तथा c_1 में कोई रेल संबंध नहीं है तथा a_1 तथा c_1 में दो रेल संबंध हैं, आदि।

आइये, एक दूसरे प्रकार की समस्या पर विचार करें। एक मनुष्य के पास १००० फीट लम्बी बाड़ करने की व्यवस्था है। वह उस बाड़ को कितनी लम्बाई, कितनी चौड़ाई में प्रयोग करे जिससे अधिकतम क्षेत्रफल सुरक्षित हो सके।

मान लिया वह X फीट लम्बाई तथा Y फीट चौड़ाई रखता है। तब

$$\begin{aligned} 2X + 2Y &= 1000 \\ \text{अथवा } X + Y &= 500 \\ \text{सुरक्षित क्षेत्रफल } A &= xy \end{aligned}$$


$$A = x(500 - x) = 500x - x^2$$

$$\frac{dA}{dx} = 500 - 2x = 0 \Rightarrow x = 250 \Rightarrow y = 250$$

$$\frac{d^2A}{dx^2} = -ve \text{ (ऋणात्मक)}$$

हल यह प्राप्त हुआ कि प्रत्येक भुजा की लम्बाई २५० फीट होनी चाहिए अथवा यह कहा जा सकता है कि क्षेत्र वर्गाकार हो।

अब मान लिया किसी व्यापारी को १००० लीटर क्षमता वाली वर्गाकार आधार वाली ढक्कनसहित टकीया (धातु की चादर की) बनाने का आदेश प्राप्त हुआ है। यदि वह प्रत्येक टकी में निम्नतम धातु का प्रयोग कर सके तो अपने लाभ को अधिकतम बना सकेगा।

आइये आप इसकी टकी की विभाषे निर्धारित कीजिये।

मान लिया आधार x मीटर का वर्ग है तथा ऊँचाई y मीटर है। तब यह ज्ञात है कि $x^2y = 1000$

टंकी में लगी चादर

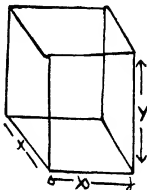
$$z = 4xy + 2x^2$$

$$\frac{dz}{dx} = 4 \times \frac{2000}{x^2} + 2x^2$$

$$\frac{dz}{dx} = \frac{8000}{x^2} + 4x = 0 \Rightarrow$$

$$x = 10, \Rightarrow y = 10$$

$$\frac{d^2z}{dx^2} = +ve \text{ (धनात्मक)}$$



अतः टकी को $10 \times 10 \times 10$ आकार का होना चाहिए—

$$z = 4 \times 10 \times 10 + 2(10)^2 = 600 \text{ वर्ग मीटर}$$

अब इस फल की जाँच करते हैं।

नीचे की तालिका में साइज और लगने वाली चादर का विवरण दिया जा रहा है। इससे यह ज्ञात होता है कि उपरोक्त आकार के अनुसार न्यूनतम धातु की चादर प्रयुक्त होती है, अन्य आकारों में अधिक।

तालिका

ल०(मी०)	चौ० (मी०)	ऊ०(मी०)	आ०(घन मी०)	प्रयुक्त धातु की चादर (वर्ग मीटर)
१	१	१०००	१०००	४००२
५	५	४०	१०००	८५०
१०	१०	१०	१०००	६००
२०	२०	२.५	१०००	१०००

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि गणितीय ढंग से प्राप्त विभाये रखने पर प्रयुक्त चादर अल्पतम है। अतः व्यापारी का लाभ अधिकतम होगा।

गणित का प्रयोग करके पहुँच से बाहर स्थलों की ऊँचाई अथवा दूरी ज्ञात की जा सकती है। उदाहरण के लिये निम्न समस्या पर विचार करे।

कोई आदमी नदी के किनारे खड़े होकर देखता है कि नदी के दूसरे किनारे पर एक वृक्ष 60° का कोण बनाता है। और जब किनारे से ४० फुट पीछे हट जाता है तब वृक्ष 30° का कोण बनाता है। वृक्ष की ऊँचाई तथा नदी की चौड़ाई ज्ञात करो।

AB वृक्ष CDEF नदी के एक किनारे पर है। EF किनारे के G बिन्दु पर खड़ा मनुष्य पर वृक्ष 60° का कोण तथा H बिन्दु पर जहाँ $HG=40'$, 30° का कोण बनाता है।

इन जानकारीयों के आधार पर बिना वृक्ष तक जाये वृक्ष की ऊँचाई ज्ञात की जा सकती है।

गणित की सहायता से कुछ व्यक्तियों के समूह के विषय में जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

आइये निम्न प्रकार की समस्या पर विचार करे। व्यक्तियों के एक समूह की औसत ऊँचाई ६८ इंच है तथा औसत भार २०० पाउंड। सह-संबन्ध गुणांक .६ है। ऊँचाई तथा भार के प्रमाप विचलन क्रमशः २.५ इंच तथा २० पाउंड है। जिस व्यक्ति का भार २०० पाउंड है उसकी ऊँचाई ज्ञात कीजिए। इस प्रकार की समस्या का हल रियेसन समीकरणों की सहायता से निकाला जा सकता है।

वस्तुओं के निर्माता सर्वे करके इस बात का पता लगाना चाहते हैं कि जनता किस प्रकार की वस्तुएं पसन्द करती है। इस कार्य के लिये विशेष व्यक्ति नियुक्त किये जाते हैं। इनकी दी हुई सूचना पर भी बिना जाँच के विश्वास नहीं किया जाता।

गणित ने ऐसे टैस्ट भी दिये हैं जिनसे यह पता लगाया जा सकता है कि प्रस्तुत आँकड़े ठीक हैं या नहीं। वास्तविक सर्वे द्वारा प्राप्त किये गये हैं अथवा धर बँठकर ही गढ़ लिये गये हैं। नीचे इसका उदाहरण है।

किसी बी० बी० सी० के पर्यवेक्षक ने ७०० व्यक्तियों से उस संगीत की

राष्ट्रीयता के बारे में जानकारी प्राप्त की जो उन्हें पसन्द है। उसने जो उत्तर प्रस्तुत किये वह इस प्रकार थे :

५७० इंगलिश, ६५० फ्रेन्च, ४८० जर्मन, ४४० इंगलिश तथा फ्रेन्च, ३६० फ्रेन्च तथा जर्मन, २४० इंगलिश तथा जर्मन तथा २२५ ने तीनों संगीत पसन्द किये। क्या यह सूचना सत्य है ?

प्रस्तुत उदाहरण में $N=७००$, $(A)=५७०$, $(B)=६५०$, $(C)=४८०$, $(AB)=४४०$, $(BC)=३६०$, $(AC)=२४०$ तथा $(ABC)=२२५$

परीक्षण सूत्र $(\alpha \beta r) = N - (A) - (B) - (C) + (AB) + (BC) + (AC) - (ABC)$ से $(\alpha \beta r)$ का मान ऋणात्मक आता है जिससे यह सिद्ध होता है कि ये सूचनाएँ असत्य है।

भारत सरकार को योजना बनाने के लिये यह जानना होता है कि जनसंख्या कितनी है। किसी विशेष समय पर जनसंख्या जानना अति व्ययसाध्य है। और भविष्य की जनसंख्या की वास्तविक गणना तो असंभव है। परन्तु गणितीय रीतियों से यह गणना संभव है। उदाहरण के लिये १९३१, १९४१, १९५१, १९६१, १९७१, १९८१ की जनसंख्या की जानकारी होने पर १९९१ अथवा १९८७ अथवा १९९५ आदि की जनसंख्या की गणना की जा सकती है।

केवल रचनात्मक कार्यों में ही नहीं, विध्वसात्मक कार्यों में भी गणित का उत्तम ही उपयोग किया जाता है।

उर्ध्वाधर समतल में गति के ज्ञान से युद्ध की कितनी ही समस्याएँ हल की जाती हैं।

युद्ध की निम्न समस्या पर विचार कीजिए। एक वायुयान X किलोमीटर की ऊँचाई पर Y किलोमीटर प्रति घण्टे के क्षैतिज वेग से उड़ रहा है। इसे पृथ्वी पर स्थित एक लक्ष्य पर बम गिराना है। लक्ष्य से कितनी क्षैतिज दूरी पर यह बम छोड़ा जाय कि वह ठीक लक्ष्य पर गिरे ?

अथवा

h मीटर ऊँची पहाड़ी पर शत्रु किसी कोण x पर अपना मोर्चा लगाये हुए है। कम से कम किस वेग से गोला फेंकने वाली तोप से उस पर प्रहार किया जा सकता है ? इन सभी प्रश्नों का हल हम गणित के साधारण प्रयोग द्वारा ज्ञात कर सकते हैं।

प्रस्तुत लेख में कुछ उदाहरण देकर गणित का प्रयोग दर्शाया गया है। वास्तव में शायद ही कोई क्षेत्र हो जहाँ गणित का कोई हस्तक्षेप न हो। इस विषय का ससार पर सबसे अधिक आधिपत्य है। * *

गंगा के सलिलीय कवक

प्रो० विजयशंकर एव डा० गंगाप्रसाद गुप्त

गंगा समन्वित योजना

(भारत सरकार पर्यावरण विभाग)

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

गंगानदी विश्व की पवित्रतम नदी है। यह सदियों से विश्व के अनगिनत लोगों का केन्द्रबिन्दु रही है। ऐसा विचार है कि चू कि गंगा का उद्गम-स्थल हिमालय है, वहाँ से चलने के बाद गंगा के जल में अनेको प्रकार के औषधीय पौधों के गुण एवं खनिजों का सम्मिश्रण होना स्वाभाविक है, जो इसे रोग-उत्पादक जीवाणुओं से पर्याप्त सीमा तक मुक्त रखने में सहायक हो सकते हैं।

चू कि गंगा के जल का उपयोग एक बड़े पैमाने पर पीने एवं सिचाई हेतु होता है, अतः इसका सीधा सम्बन्ध देशवासियों के स्वास्थ्य एवं अर्थ से है। अतः यह जरूरी है कि गंगा को प्रदूषण से बचाया जाये। बीसवीं सदी की औद्योगिक क्रान्ति ने देश में उद्योगों की स्थापना में लगातार वृद्धि की है। जनसंख्या की वृद्धि भी असाधारण रूप से हुई है। इनका पर्यावरण पर प्रभाव स्पष्ट रूप से प्रकट हुआ है। देश के ४४ प्रथम एवं ६६ द्वितीय श्रेणी के शहरों में सीवेज सशोधन प्लांट्स के अभाव में दूषित पदार्थ गंगा के जल में सीधे डाले जाते हैं। साथ ही फैक्ट्रियों का कचड़ा बिना शोधन किए डाला जाता है। आज गंगाजल की स्थिति यह है कि अनेको स्थानों पर गंगाजल बिना शोधन किए पीने योग्य नहीं है। इस गम्भीर समस्या को हल करने हेतु केन्द्रीय गंगा प्राधिकरण का गठन हुआ है। इसके अध्यक्ष देश के युवा प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी जी की सरक्षता में गंगा को साफ करने और रखने पर तीव्र गति से कार्य प्रारम्भ किया गया है।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार में “गंगा समन्वित योजना” के अन्तर्गत गंगा क्षेत्र का समन्वित अध्ययन प्रगति पर है। जिसमें गंगा के जल में पाये जाने वाले कवकों का अध्ययन भी शामिल है।

कवक मिट्टी, जल एवं वायु में पाये जाते हैं, तथा मानव-जीवन को परोक्ष या अपरोक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। इनमें से कुछ मानव के लिए उपयोगी हैं। कुछ कवक हानिकारक भी हैं। ये कवक जैविक पदार्थों का विखण्डन करते हैं।

यदि इस प्रकार के सूक्ष्म जीव न होते तो शायद पृथ्वी पर जीवन के परिवर्तन कल्पना कर पाना असम्भव होता। जहाँ एक ओर कुछ कवको का उपयोग भोज्य-पदार्थों के रूप या औषधि निर्माण आदि में होता है, वही दूसरी ओर कुछ कवक अनाजों, पौधों, फलों, पशुओं एवं मानव में अनेकों व्याधियों को भी जन्म देते हैं। जिसके फलस्वरूप जन एवं धन दोनों प्रकार की गम्भीर हानि होती है।

कवको द्वारा पशुओं एवं मनुष्यों में उत्पन्न व्याधियों को माइकोजेज कहा गया है (मेडिकल माइकोलोजी, तृतीय संस्करण, के०एम० वर्धी प्रकाशन)। इस प्रकार की व्याधियाँ निम्न एवं उच्च दोनों ही प्रकार के कवको से उत्पन्न होती हैं। ऊमाईसिटोज श्रेणी के कवको द्वारा उत्पन्न बीमारियों को ऊमाईकोजेज तथा संप्रोलिएरिया के द्वारा उत्पन्न बीमारी को संप्रोलिएरियोसिस कहते हैं। यह रोग मछलियों में पाया जाता है। पेन्सिलियम (हरित कवक) की कुछ प्रजातियाँ जैसे पे० बर्टोसी, पे० एक्सपेन्सम एवं एसस्पेरजिलस ब्लैवेटम पटुलिन नामक कवक विष बनाती हैं जो कांसिनोजेनिक हैं। खाये जाने वाले मशरूम की कुछ प्रजातियाँ गैस्ट्रोइन्टेस्टाइनल इरिटेंट को जन्म देती हैं। फ्यूजेरियम (अपूर्ण कवक) की प्रजातियाँ जैसे फ्यू० सोलेनायी, फ्यू० निवाले, कारनेल अल्सर पैदा करती हैं। जोन्स सैक्शन एवं रेबेल (१९७०) बास्कम पामरनेत्र संस्थान मियामी फ्लोरिडा, ने अपने अध्ययन के दौरान ३८ व्यक्तियों में से (१९५६-१९६९) २६ लोगों में यह व्याधि फ्यूजेरियम के द्वारा उत्पन्न हुई ऐसा बताया है। इसके अलावा कवको की २० जातियाँ घातक व्याधियाँ, ४५ गम्भीर व्याधियाँ, एवं सैकड़ों अन्य प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न करती हैं। सैकड़ों प्रकार की बीमारियाँ, पशुओं, कृषिपौधों पर भी इन्हीं के द्वारा होती हैं। बीमारी के इन कवको का स्रोत मिट्टी, जल एवं वायु है।

सर्वेक्षण विधियाँ एवं परिणाम—

इस अध्ययन के दौरान मुनि की रेती जनपद ऋषिकेश से लेकर हरिद्वार, गढ़मुक्तेश्वर जनपद मुरादाबाद तक के विभिन्न नमूने बिन्दु (Sampling points) से गंगा के जल एवं उसमें कारखानों के गिरने वाले व्यर्थ पदार्थों को लेकर प्रयोगशाला में बैटिंग टैक्नीक (Baiting technique) से अनेक प्रकार के कवक प्राप्त हुए हैं। जिनमें कुछ प्रजातियाँ संप्रोलिएरिया एवं एक्लिया की भी हैं। वीरभद्र के आई०डी०पी०एल० का व्यर्थ कचड़ा जहाँ गंगा में मिलता है वहाँ से लैप्टोमाईटस लैक्टस प्राप्त हुआ है, गढ़मुक्तेश्वर से जहाँ एक बड़ा शमशान घाट है, कम कवक प्राप्त हुये हैं। कुछ नमूने बिन्दुओं से फ्यूजेरियम की जातियाँ भी प्राप्त की गई हैं। बिहार में भी गंगा में अनेक प्रकार के कवक पाये जाने की रिपोर्ट भागलपुर विश्वविद्यालय के प्रो० के० एस० बिलग्रामी एवं मुन्सी दत्ता

(१९७६) ने दी है। गंगा क्षेत्र में ये कवक कृषि पौधों, जलीय जीव, मुख्यतः मछलियों की कुछ जातियों एवं मानव को किस सीमा तक प्रभावित करते हैं, इसका अनुमान लगाने के लिए विस्तृत अध्ययन की आवश्यकता है।

आभार—लेखक, पर्यावरण विभाग, भारत सरकार द्वारा आर्थिक सहायता प्रदान करने के लिए आभारी है। वे गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के कुलपति माननीय श्री जी० बी० के० हूजा (अवकाशप्राप्त आई० ए० एस०) के उत्साहवर्द्धन, नेतृत्व, शैक्षणिक-अनुसन्धात्मक अभिवृत्तियों एवं शोध-कार्यों हेतु साधन प्रदान करने हेतु हृदय से आभार प्रकट करते हैं।

सन्दर्भ—(१) बिलग्रामी, के० एस० एवं जे० एस० दत्ता मुन्सी (१९७६) लिम्नो-लोजिकल सर्वे एण्ड इम्पैक्ट ऑफ ह्यूमेन एक्टिविटीज आन दि रीवर गैन्जेज, पृष्ठ : १—८७।

(२) चेस्टर डब्लू एमान्स, चैम्पैन एच बिनफोर्ड, जान पी पूतज एवं के० के० नोनचग, मेडिकल पाईकोलोजी, तृतीय संस्करण, पेज न० १-१६०, के०एम० वर्धी प्रकाशन।

(३) जोम्स, डी०बी० सैक्सटन, आर० एव रेबेल०जी० (१९६६), माइक्रोटिक केरेटाईट्स इन साउथ फ्लोरिडा, ट्रांस आफ थल सी०, यू० के० ८६, पृष्ठ ७८१-७८७।

गंगा समन्वित योजना

(भारत सरकार पर्यावरण विभाग)

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

गंगा विश्व की पवित्रतम नदियों में से एक है। जिसका उद्गम हिमालय पर्वत के गोमुख नामक स्थान से है। गंगा हिमालय पर्वत से निकलकर देश के तीन घनी आबादी वाले राज्यों उत्तरप्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल के मैदानी भागों में करीब २५२५ किलोमी० की दूरी तय करके बंगाल की खाड़ी के पास समुद्र में अपना अस्तित्व समाप्त कर देती है। प्राचीन काल से ही भारत की संस्कृति-सम्पत्ता गंगा से जुड़ी हुई है।

पिछले दो दशकों से जनसंख्या में असाधारण वृद्धि, तकनीकी विकास तथा पारिस्थितिकी असंतुलन के कारण गंगा की पवित्रता काफी सीमा तक प्रभावित हुई है, जिसके फलस्वरूप गंगा के किनारे पर बसे छोटे-बड़े नगरों से निकलने वाले घरेलू उत्प्रवाह से गंगा का जल रासायनिक एवं जैविक कारणों से दिन-प्रतिदिन प्रदूषित हो रहा है। इसी प्रकार तकनीकी विकास में किये गये नये-नये अनुसंधानों द्वारा नये-नये रसायन खोजे जा रहे हैं तथा कारखाने लगाये जा रहे हैं, जिनका औद्योगिक उत्प्रवाह प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से नदियों में ही आ रहा है। नदियों पर बाध आदि बनाकर नयी-नयी नहरें अथवा विद्युत परियोजनाएँ क्रियान्वित की जा रही हैं, जिनके कारण नदियों का प्राकृतिक प्रवाह बहुत कम हो रहा है, जो प्रदूषण में सहायक है।

गंगा की पवित्रता को बनाये रखने के लिए तथा विभिन्न स्रोतों से होने वाले प्रदूषण की मात्रा पर शोध एवं अध्ययन हेतु भारत सरकार के पर्यावरण विभाग द्वारा “पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण” अध्ययन के अंतर्गत कुछ धनराशि विभिन्न विश्वविद्यालयों को प्रदान की गयी है, जिनमें से गुरुकुल कांगड़ी विश्व-विद्यालय, हरिद्वार भी एक है। इस विश्वविद्यालय के वनस्पति विभाग के अध्यक्ष डा० विजय शंकर ने निर्देशन में उक्त परियोजना का कार्य सुचारु रूप से प्रगति पर है।

प्रथमवर्षीय कार्य का विवरण—

इस योजना की अवधि भारत सरकार द्वारा तीन वर्ष निर्धारित की गयी है, जिसके फलस्वरूप योजना के कार्य को भी तीन चरणों में विभक्त किया गया है। प्रथम चरण में निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार निर्धारित सभी उपलब्धियाँ प्राप्त कर ली गयी है। जो कि निम्न प्रकार है—

- (अ) गंगा के दोनों किनारों पर सेम्पलिंग स्टेशनो का निर्धारण करके उक्त स्थानों से नियमित रूप से जल एवं मृदा तथा वानस्पतिक, सभी प्रकार के नमूने एकत्र किये जा रहे हैं।
- (आ) गंगा में मिलने वाले विभिन्न प्रकार के शहरी एवं औद्योगिक प्रदूषण-स्रोतों का पता लगाकर उनसे निकलने वाले उत्प्रवाह का सेम्पलिंग भी किया जा रहा है। जिससे कि यह पता लगाया जा सके कि उनकी प्रदूषण-क्षमता क्या है तथा इसमें उपस्थित प्रदूषक गंगा में मिलने के उपरान्त किस सीमा तक गंगा की पवित्रता को प्रभावित करते हैं।
- (इ) गंगा पर बाध आदि का निर्माण करके उनसे जो नहरे अथवा विद्युत परियोजनाएँ तैयार की जा रही है, उनसे लवणता तथा जलरिसाव (सीपेज) की समस्याएँ उत्पन्न हुई है, उन क्षेत्रों का भी पता लगा लिया गया है।
- (ई) वर्षा ऋतु के दौरान गंगा की बाढ़ से होने वाली हानि एवं भू-अपरदन जैसी गहन समस्याओं से निपटने लिये गंगा के किनारे बसे गाव-जैसे कागडी ग्राम, गाजीबाली, श्यामपुर, पीली, सजनपुर तथा जगजीतपुर आदि गावों में पौधों की कुछ ऐसी प्रजातियों का रोपण किया गया जो कि भू-अपरदन को रोकने में सहायक हों।
- (उ) उक्त क्षेत्रों के नक्शे एवं चार्ट आदि भी अग्रिम कार्यवाही हेतु तैयार कर लिये गये हैं।
- (ऊ) विभाग के बगोचे में एक पौधशाला भी तैयार की गयी है जिसमें अनेक प्रकार के लगभग १०,००० पौधों को उगाया गया है जो कि भूमि अपरदन एवं बाढ़-नियंत्रण में सहायक हो सकते हैं। इसी के साथ उन औषधीय पौधों को भी उगाया जा रहा है जो गंगा क्षेत्र में तीव्र गति से समाप्त हो रहे हैं या जिनका अस्तित्व खतरे में है।
- (ए) इस योजना के कार्यक्षेत्र में उपलब्ध अधिकांश औषधीय पौधों एवं सौन्दर्य-प्रसाधन में उपयोगी पौधों की सूची तैयार की गयी है, जिससे यह पता

लगाया जा सके कि गंगा क्षेत्र से किस मात्रा में ये पौधे प्राप्त किये जा सकते हैं ।

- (ऐ) गंगा के किनारे बसे कुछ ग्रामों के सामाजिक एवं आर्थिक पहलुओं का भी अध्ययन करके उनका तुलन-पत्र तैयार किया जा रहा है, ताकि उनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति सुधारने के लिये सरकार से सिफारिश की जा सके ।

शोध स्टाफ—

इस परियोजना में निम्नलिखित स्टाफ कार्यरत है :

- | | |
|------------------------|---|
| (१) शोध वैज्ञानिक | डा० आर० पी० एम० सागू |
| (२) सीनियर रिसर्चफ़ेलो | (अ) डा० जी० पी० गुप्ता (वनस्पति)
(आ) श्री ए० पी० रस्तोगी (वनस्पति) |
| (३) जूनियर रिसर्चफ़ेलो | (अ) श्री जी० सी० जोशी (जन्तु विज्ञान)
(आ) श्री मिश्रा (वनस्पति)
(इ) श्री नीरजकुमार त्रिवेदी (वनस्पति)
(ई) श्री गोविन्दकान्त श्रीवास्तव (रसायन शास्त्र) |
| (४) फील्ड/लैब अटेंडेंट | (अ) श्री चन्द्रप्रकाश
(आ) श्री पौखपाल |
| (५) माली | श्री रामअनोर |
| (६) चालक | श्री माणेराम |

सर्वेक्षण तथा सम्प्लिंग स्टेशन—

ऋषिकेश से गढ़मुक्तेश्वर तक फैले क्षेत्र का सघन सर्वे निर्धारित अवधि के अन्तर्गत कर लिया गया । सर्वे के दौरान इस क्षेत्र में आने वाले प्रदूषण-स्रोतों की पहिचान कर ली गयी है तथा सभी छोटे तथा बड़े प्रदूषण-स्रोतों से निकलने वाले घरेलू तथा औद्योगिक उत्प्रवाहों का यथासम्भव सम्प्लिंग भी नियमित रूप से महीने में एक बार एवं कुछ स्थानों में दो बार किया जा रहा है । इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में गंगा की बाढ़, जल-प्लावन, जलरिसाव आदि समस्याओं से ग्रस्त क्षेत्रों का पता लगाया गया । सर्वेक्षण एवं सुविधा की दृष्टि से पूरे क्षेत्र को दो क्षेत्रों में विभाजित किया गया है—(अ) हरिद्वार से ऊपर ऋषिकेश तक का क्षेत्र, (आ) हरिद्वार से नीचे गढ़मुक्तेश्वर तक का क्षेत्र ।

(अ) हरिद्वार तथा उससे ऊपर ऋषिकेश तक के क्षेत्र के प्रदूषण-स्रोत तथा उनकी प्रदूषण-क्षमता—

यह क्षेत्र करीब ३० किमी० दूर तक फैला हुआ है। इसके अन्तर्गत ऋषिकेश, भारत सरकार का उपक्रम आई०डी०पी०एल० एव उसका टाउनशिप आदि प्रदूषण-स्रोत आते हैं।

ऋषिकेश में गंगा के दाहिने किनारे पर त्रिवेणी घाट नाला एक प्रमुख प्रदूषण-स्रोत है जिसके द्वारा गंगा के दाहिने किनारे पर स्थित सम्पूर्ण शहर का घरेलु मल-मूत्र (घरेलु उत्सर्ग) इस नाले द्वारा आकर त्रिवेणी घाट के पास गंगा में मिल जाता है तथा गंगा की जलगुणता को काफी सीमा तक प्रभावित कर प्रदूषित करता है। इसके अतिरिक्त इस किनारे पर कुछ छोटे-छोटे मौसमी नाले, जैसे शीशम की झाड़ी ड्रेन तथा मूनी की रेती ड्रेन आदि गंगा में मिल जाते हैं। इन नालों का प्रवाह अधिक न होने के कारण गंगा के तेज प्रवाह में इनका प्रभाव नगण्य-सा हो जाता है।

गंगा के बायें किनारे पर स्थित कुछ धार्मिक आश्रमों एवं म्थानों जैसे— स्वर्ण आश्रम, गीता भवन, परमार्थ निकेतन, लक्ष्मणझूला बस्तो आदि से निकला हुआ घरेलु उत्सर्ग भी गंगा नदी में आकर मिल जाता है। करीब १० नाले स्वर्ण आश्रम क्षेत्र से तथा ५ लक्ष्मणझूला क्षेत्र से गंगा में मिल रहे हैं। सर्वेक्षण के दौरान इन नालों की एक प्रमुख विशेषता यह पायी गयी कि इन नालों का प्रवाह सध्या तथा दोपहर की अपेक्षा सुबह अधिक नोट किया गया है। दूसरी प्रमुख विशेषता इन नालों की यह पायी गयी है कि इन नालों की निकासी प्रमुख स्नान-घाटों के पास है जहाँ पर तीर्थयात्री तथा श्रद्धालु भक्तजन गंगा-जल का आचमन करते हैं। जिसका सीधा प्रभाव स्नान करने वाले श्रद्धालुओं के स्वास्थ्य पर पड़ता है। तथा इसके अतिरिक्त इन आश्रमों से निकलने वाली गन्दगी का ढेर भी गंगा के किनारे लगा दिया जाता है। वर्षा के दौरान गंगा में प्रवाह बढ़ने से सम्पूर्ण ठोस पदार्थ गावेंज पत्तों के दोने, कागज, प्लास्टिक, आम की गुठली आदि गंगा में मिल जाते हैं तथा गंगा की पवित्रता को नष्ट करते हैं। ऋषिकेश में स्थित घोबीघाट, स्नान घाट, मन्थान घाट भी गंगा के प्रदूषण का कारण हैं।

ऋषिकेश से करीब १० कि.मी. नीचे की ओर भारत सरकार उपक्रम आई. डी. पी. एल. संस्थान वीरभद्र पर स्थित है जिसमें जीवनरक्षण औषधियों, जैसे— पैन्सिलिन, स्ट्रेप्टोमाइसिन का निर्माण बड़ी मात्रा में किया जा रहा है, इसकी अपनी अलग टाउनशिप है। ऋषिकेश तथा हरिद्वार के बीच पड़ने वाले क्षेत्र में यह संस्थान एक प्रमुख प्रदूषण-स्रोत के रूप में मार्क किया गया है। इस संस्थान से दो मुख्य नाले, क्रमशः खदरी ग्राम तथा पञ्चलोक बैराज के पास आकर

गंगा में मिल जाते हैं। खदरी ग्राम के पास मिलने वाले नाले में टाउनशिप का घरेलू उत्प्रवाह तथा फैक्टरी का औद्योगिक उत्प्रवाह गंगा में मिलकर गंगा की पवित्रता को नष्ट कर देते हैं। इस उत्प्रवाह के पीने से गाव वालों के जानवर आदि मर रहे हैं तथा इसमे नहाने आदि से शरीर में खुजली तथा अन्य प्रकार की त्वचा की बीमारियों की शिकायत ग्रामवासियों से निरन्तर मिलती रहती है। इस उत्प्रवाह में घुलनशील आक्सीजन की मात्रा निर्धारित मापदण्ड से अत्यधिक कम अथवा शून्य मिल रही है जो कि गंगा के पानी में रहने वाले जीव-जन्तुओं के लिए घातक सिद्ध हो रही है। इसके अतिरिक्त अधिकतर अवसरों पर इस उत्प्रवाह की पी०एच० भी अम्लीय पाई गयी है जोकि जीव-जन्तुओं तथा छोटे पौधों के लिये हानिकारक सिद्ध हुयी है। पशुलोक बैराज से (चीला नहर में) गंगा का अधिकतर जल विद्युत उत्पादन हेतु ले लिया जाता है जिससे गंगा में प्राकृतिक प्रवाह की मात्रा काफी कम हो जाती है। साथ ही प्रवाह की गति भी काफी धीमी हो जाती है। ऐसी स्थिति में एक छोटा-सा नाला भी इसे प्रदूषित कर सकता है। चीला नहर क्षेत्र सीपेज से ग्रस्त है।

वीरभद्र से करीब ७ कि मी नीचे की ओर गंगा की सहायक नदी सोग भी गंगालहरी के पास अपना अस्तित्व गंगा में मिला देती है।

उपरोक्त प्रदूषण-स्रोतों को दृष्टि में रखते हुए ऋषिकेश तथा हरिद्वार के बीच निम्नलिखित सैम्पलिंग स्टेशन निर्धारित किये गये हैं :

- (१) त्रिवेणी घाट
- (२) पशुलोक बैराज
- (३) आई० डी० पी० एल० नाला
- (४) श्यामपुर खादर
- (५) सोग नदी
- (६) मुनी की रेती, स्वर्गाश्रम आदि (सीजनल सैम्पलिंग)

हरिद्वार हिन्दुओं की एक धार्मिक नगरी है, जो ऊपरी गंगा नहर के दायें किनारे पर स्थित है। इसमें आश्रमों और मन्दिरों की संख्या इतनी अधिक है कि लोग इसे आश्रमों एवं मन्दिरों की नगरी के नाम से पुकारते हैं। देश-विदेश से लाखों तीर्थयात्री इस पवित्र नगरी में अपने पापों का पश्चाताप करने एवं उन्हें धोने के लिए गंगा में स्नान करने हरिद्वार आते हैं। हरिद्वार में स्नान घाटों, स्नानान घाटों, धोबी घाटों, पूजा के दौरान विसर्जित किये जाने वाले आर्गेनिक पदार्थ, जैसे- फूल, पत्ती, चिराग आदि के अलावा सात प्रमुख नालों जैसे भीमगोड़ा, कागडा मन्दिर, वाईसोता, ललिताराव, विष्णुघाट, कुशाघाट, गऊघाट, एवं बी. एच. ई. एल. का विशेष योगदान गंगा एवं गंगा नहर के प्रदूषण में है। इसमें सबसे अधिक कुप्रभाव बी. एच. ई. एल. नाले का है।

बी. एच. ई. एल. नाला गंगा नहर पर बने रेलवे पुल के पास औद्योगिक उत्प्रवाह एव ज्वालापुर की गन्दगी को गंगा में मिला रहा है जो दूर तक गंगा के पानी को काला बना देता है। इस नाले में हमेशा घुलनशील आक्सीजन की मात्रा शून्य मिली है जो नाले में भारी मात्रा में आर्गेनिक प्रदूषण लोड भार को प्रदर्शित करती है। इस स्थान से नीचे पड़ने वाले सभी स्नान-घाटों पर इसका प्रभाव नोट किया गया है। इसमें बी ओ डी, एम. पी. एन. इन्डैक्स प्रदूषण की निर्धारित मापदण्ड की तुलना में काफी अधिक मिले हैं।

हरिद्वार में गंगा में मिलने वाले सभी नालों की स्थिति को देखते हुए निम्न सैम्पलिंग स्टेशन निर्धारित किए गए हैं तथा महीने में दो बार नियमित रूप से जल-नमूने, आने वाले कुम्भ मेले की महत्ता को देखते हुए, एकत्र करके उनका विप्लेयण किया जा रहा है—

- (१) कागडा मन्दिर
- (२) हरि की पौड़ी
- (३) खिलताराब नाला
- (४) ज्वालापुर नाला—२ (बी. एच. ई. एल.)
- (५) सतीघाट, भीमगोडा एव दक्ष प्रजापति (सीजनल)

(आ) हरिद्वार से नीचे गङ्गमुक्तेश्वर तक क्षेत्र के प्रदूषण-स्रोत तथा उनको प्रदूषण-क्षमता—

यह क्षेत्र हरिद्वार से नीचे की ओर करीब २०० कि.मी दूरी तक गङ्गमुक्तेश्वर तक फैला हुआ है। इसके अन्तर्गत बिजनौर, मुरादाबाद, मुजफ्फरनगर तथा गाजियाबाद जिलों के क्षेत्र आते हैं। बिजनौर जिले में कोई बड़ा कारखाना अथवा शहर गंगा के किनारे स्थित नहीं है, लेकिन गंगा के किनारे शमशान घाटों की राख, अर्ध-जले शवों, लकड़ियों के हिस्सों के अलावा छोटी-बड़ी शूगर मिलों का औद्योगिक उत्प्रवाह ही है जो स्थानीय रूप से गंगा की गुणता को प्रभावित करते हैं।

इस क्षेत्र में गजरोला (मुरादाबाद) का औद्योगिक क्षेत्र गंगा का प्रमुख प्रदूषण-स्रोत है। इस औद्योगिक क्षेत्र में वायु-आर्गेनिक, रसायन, सैन्चुरी पेपर मिल, श्री एसिड एव कैमिकल्स के अतिरिक्त अन्य छोटी-छोटी औद्योगिक इकाइया अपना औद्योगिक उत्प्रवाह बगध नाले द्वारा गङ्गमुक्तेश्वर से नीचे गंगा में डाल रही हैं। बगध नाले की प्रदूषण-क्षमता राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय मापदण्डों से काफी अधिक है। इसमें घुलनशील आक्सीजन की मात्रा हमेशा शून्य तथा पी. एच. अम्लीय मिली है। यहाँ के स्थानीय लोगों के अनुसार इसमें कुछ ऐसे घातक जहरीले तत्व भी विद्यमान हैं जिनके पीने से उस क्षेत्र में पशुओं और

पक्षियों की जान चली गयी है। इस नाले की बी. ओ. डी. तथा सी. ओ. डी. हज़ारों की संख्या में पाई गई है जो कि यह प्रदर्शित करती है कि इसमें आर्गेनिक तथा इनार्गेनिक प्रदूषण का अत्याधिक भार विद्यमान है।

इस क्षेत्र में गंगा के किनारे पड़ने वाला दूसरा छोटा शहर गढ़मुक्तेश्वर है। इस शहर में कोई बड़ा औद्योगिक प्रतिष्ठान आदि नहीं है। लेकिन शहर से निकलने वाले घरेलु उत्प्रवाह के अलावा बृजघाट श्मशान घाट विशेष प्रदूषण-स्रोत है। ऐसा बताया गया कि बृजघाट श्मशान घाट पर औसतन ३० से ७० शव प्रतिदिन जलाये जाते हैं। जिनको राख तथा अर्धजली लकड़ी एवं शव के हिस्से गंगा में प्रवाहित कर दिये जाते हैं। शव के अर्धजले हिस्सों को कुत्ते तथा अन्य जंगली जानवर खाते हुए देखे गये हैं। बृजघाट पर एम०पी०एन० इन्डैक्स की मात्रा काफी अधिक मिली है। इसके अलावा घुलनशील आक्सीजन की मात्रा मापदण्ड से कम, जबकि बी० ओ० डी० की मात्रा मापदण्ड से अधिक मिली है जो कि इस क्षेत्र में आर्गेनिक प्रदूषण को प्रदर्शित करती है।

उक्त प्रदूषण-स्रोतों को देखते हुए इस क्षेत्र में निम्न सैम्पलिंग स्टेशन निर्धारित किये गये हैं—

- (१) चण्डीपुल
- (२) नागल
- (३) रावली बैराज दोनों किनारे
- (४) तिगरी
- (५) गढ़मुक्तेश्वर दोनों किनारे

गंगाजल की गुणता तथा प्रदूषण-स्रोतों की प्रदूषण-क्षमता—

गंगाजल की गुणता एवं विभिन्न प्रदूषण-स्रोतों की प्रदूषण-क्षमता का पता लगाने हेतु एकत्र किये गये जल-नमूनों का निम्न भौतिक, रसायन एवं जैविकात्मक कारकों का विश्लेषण फील्ड तथा प्रयोगशाला दोनों में ही किया जा रहा है, जिसमें गुणात्मक एवं मात्रात्मक अध्ययन निहित है।

(अ) भौतिक-रसायन कारक—

इस विश्लेषण के अन्तर्गत टरबिडिटी (मैलापन), कण्डक्टिविटी, पी. एच., रंग, गंध, कठोरता, शारीर्यता, सल्फेट, स्वोराइड, नाइट्राइट, नाइट्रेट, घुलनशील आक्सीजन, बी.ओ.डी., सी.ओ.डी. आदि प्रमुख कारकों का अध्ययन किया जा रहा है, जिनके आधार पर गंगाजल की गुणता तथा विभिन्न प्रकार के प्रदूषण-स्रोतों की प्रदूषण-क्षमता का पता लगाया जा रहा है।

औद्योगिक उत्प्रादों का डी० ओ० (I. D. P. L. ऋषिकेश, BHEL, रानीपुर) ० से ३ मि०ग्रा०/लि० एवं बी०ओ०डी० २५० से ४५० मि०ग्रा०/लि० पाया गया ।

त्रिभिन्न स्थलों से गंगा के पानी का डी० ओ० ४.५ से १२.० मि०ग्रा०/लि० पाया गया । इसी प्रकार बी०ओ०डी० और सी०ओ०डी० क्रमशः २० से १३० मि० ग्रा०/लि० एवं ८० से २६० मि०ग्रा०/लि० पाये गये । गंगाजल का पी०एच० प्रायः ७ से ८ तक रहा । टर्बिडिटी ०-६ एन० टी० यू० (सरद ऋतु में) एवं १२०० एन० टी० यू० वर्षा ऋतु में पाई गई ।

(आ) जैविकात्मक—

इस विश्लेषण के अन्तर्गत पानी में पाये जाने वाले फाइटोप्लाक्टन, जूप्लाक्टन, कवक एवं जीवाणुसम्बन्धी कारकों का अध्ययन किया जा रहा है । जो निम्न प्रकार है :

(क) फाइटोप्लाक्टन—

गैवाल के ८५ जैनरो जो मुख्यतः क्लोरोफाइसी, साइनोफाइसी, बैक्टीरियोफाइसी, जैन्थोफाइसी परिवार के सदस्य हैं, पाये गये । इसमें से कुछ जातियाँ (स्पीशीज) ऐसी हैं जो प्रदूषित जल में मिलती हैं तथा कुछ ऐसी जातियाँ हैं, जो साफ जल में मिलती हैं । प्रदूषित जल में मिलने वाली जातियाँ निम्नलिखित हैं : जैसे ओसीसीडोरिया, फोरनीडियम, स्टार्जिनोक्लेनियम, मारफोस्पाइरा, सिनेडरा, मोनोसीरा, एनासिसटिस आदि । साफ जल में मिलने वाली प्रमुख जातियाँ क्लोकोफोरा, यूलोथिक्स, मेवोकुला, साइक्नोटिला आदि हैं ।

(ख) जूप्लाक्टन—

जूप्लाक्टन मुख्यतया सीलीएट, पलैजीलेट, रहाइजोपोडस, रोटीकर्स, क्लैडोसीरा, कोपीपोडस वर्ग के पाये गये । मछलियों की १६ किस्में पाई गई ।

(ग) जीवाणु सम्बन्धी—

गंगा के जल में पाये जाने वाले एम०पी०एन० इन्डेक्स की मात्रा २१ से ११०० प्रति० १०० एम०एल० की रेंज में प्राप्त हुयी है, जबकि गिरने वाले गन्दे नालों की एम.पी.एन. इन्डेक्स प्रति १०० एम.एल. ४५०×१०^३ से २४००×१०^३ तक प्राप्त हुई है । श्मशान भूमि में एम. पी. एन. इन्डेक्स प्रति १०० एम. एल. ४३×१०^३ (तिगरी) से २१०×१०^३ (गढ़मुक्तेश्वर) तक पाया गया ।

क्षेत्र के पौधों का अध्ययन—

करीब ३४ विभिन्न परिवारों की १६० जातियों के पौधों को एकत्र करके हरबेरियम शीट पर लगाया गया। ये पौधे ऋषिकेश से गढमुक्तेश्वर तक फैले क्षेत्र से विभिन्न सैम्पलिंग स्टेशनों से एवं आसपास से एकत्र किये गए।

प्रदूषित स्थलों से एकत्र किये गये कुछ पौधे इस प्रकार हैं—एफाइरेन्यस एस्पेरा, लैन्टाना स्पी., एपेरैन्यस स्पाइगोसस, आइथोमिया कारनिया, ओफेसिलिस, केलो-ट्रोफिस स्पी., मॅसोलोटस इन्डिका, सॅकेरम स्पी., विट्रानिया सोमनीफेरा, साइनोडान आदि।

औषधीय पौधे—

अभी तक ४७ प्रमुख औषधीय पौधे अध्ययन के दौरान एकत्र किये गए हैं। ईजिप्त मारमोसस, ओरोआइलम इन्डिकम, सोलेनम इन्डिकम, सो० जॅम्बोकारपम, डॅम्बोडियम पोटिकम, यूरेरिया पिस्टा, टरबीनेलिस चेबुला, ट० बॅलेरिका आदि स्थानीय रूप से समाप्त हो रहे हैं क्योंकि औषधि निर्माताओं द्वारा इनको बड़े पैमाने पर एकत्र किया जाता है।

सामाजिक आर्थिक-सर्वेक्षण—

कुछ गांव, जैसे कांगड़ी, जगजीतपुर, श्यामपुर तथा गाजीवाली की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का अध्ययन करने हेतु उनके तुलन-पत्र तैयार किये जा रहे हैं।

प्रयोगात्मक कार्य—

भारत सरकार उपक्रमों, क्रमशः आई डी पी.एल. तथा बी.एच.ई.एल. के औद्योगिक उत्प्रवाहों को एकत्र करके आइशोरनिया, लेमना तथा अजौला पौधों को उनमें उगाने के प्रयोग प्रगति पर है, ताकि यह पता लगाया जा सके कि कौन-कौन पौधे किस सीमा तक औद्योगिक उत्प्रवाहों में विद्यमान विभिन्न प्रदूषकों को कम करते हैं जिससे भविष्य में उन पौधों को उत्प्रवाहों पर उगाकर प्रदूषण कम किया जा सके और बायोमास उत्पादन एवं उसमें ऊर्जा की क्षमता का पता लगाया जा सके। गंगा क्षेत्र में पाये जाने वाले नाइट्रोजन-फिक्सिंग शैवाल, एजौला आदि का सूचीकरण कर उनकी नाइट्रोजन फिक्सिंग क्षमता का अध्ययन करने के लिए प्रयोग प्रारम्भ किये जा रहे हैं।

लेख एवं रिपोर्ट—

गंगा के ऊपर ४ लेख एवं तीन रिपोर्ट प्रकाशित कीं जिनसे गंगा के अपकर्ष के विषय में जानकारी मिलती है। रिपोर्टों में पर्यावरण अपकर्ष को रोकने

के लिये सुझाव दिये गये हैं। डा० वि० शंकर का A. I. R. नजीबाबाद एवं हिन्दु-स्तान टाइम्स की पत्रकार कु० गार्गी पारसाई ने इन्टरव्यू लिया जिसके आधार पर उक्त पत्र में तीन लेख गंगा के ऊपर प्रकाशित हुये।

गंगा के किनारे कतिपय ग्रामों को बाढ़ से बचाने हेतु सम्बन्धित अधि-कारियों से सम्पर्क किया। इस विषय में जो प्रगति हुई है उससे आशा है कि गंगा के कुछ क्षेत्र में चैक डैम शीघ्र बनेंगे। कुलपति श्री जी० बी० के० हूजा एवं बिजनौर के जिलाधिकारी का इसमें विशेष योगदान है।

गंगा समन्वित योजना टीम विश्वविद्यालय के कुलपति श्री जी. बी. के. हूजा, आई ए एस. (अ०१९१०) की इस कार्य में अत्यधिक रुचि एवं प्रदत्त सुविधाओं के लिए हृदय से कृतज्ञ है। भारत सरकार के पर्यावरण विभाग द्वारा दी गयी आर्थिक एवं शोध-सुविधाओं के लिए गंगा योजना एवं विश्वविद्यालय उनका विशेष आभार प्रकट करता है।

—डा० वि० शंकर

मुख्य अन्वेषक

गंगा समन्वित योजना

(भारत सरकार पर्यावरण विभाग)

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, वनस्पति विज्ञान विभाग

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

“एक समय था जब जल तथा वायु सभी के लिए मुक्त उपलब्ध थे, लेकिन अब उनकी भी कीमत है। हमें उनका मूल्य चुकाना पड़ता है……या तो जल तथा वायु को प्रदूषणरहित बनाने का मूल्य अथवा अपने स्वास्थ्य में गिरावट और शांतिपूर्ण जीवन में बाधा के रूप में चुकाया गया मूल्य।”

—इन्दिरा गांधी

“गंगा भारतीय संस्कृति की प्रतीक, पुराणों तथा कविता का स्रोत और लाखों लोगों की जीवनदायिनी है, किन्तु खेद का विषय है कि आज यह सर्वाधिक प्रदूषित नदियों में से एक है। केन्द्रीय गंगा प्राधिकरण का गठन करके गंगा तथा इसकी सहायक नदियों के प्रदूषण को समाप्त करने की योजना को अमली जामा पहनाया जायेगा।”

—राजीव गांधी



कांगड़ी ग्राम में कुलपति श्री जी० बी० के० हूबा, श्री आर० वेंकटरमन, कृषि उत्पादन आयुक्त उ० प्र० को ग्राम की समस्याओं एवं विश्वविद्यालय द्वारा किये गये विकास-प्रयासों के बारे में बताने हुए। बायें से डा० विजय शंकर, निदेशक कांगड़ी ग्राम विकास योजना, श्री के० पी० गुप्ता, श्री जी० बी० के० हूबा कुलपति, श्री आर० वेंकटरमन, कृषि उत्पादन आयुक्त उ० प्र०, डा० बी० डी० जोशी, अध्यक्ष जन्तु विज्ञान विभाग।

पर्यावरण हो जो शुद्ध.....

एकता बनी रहे, अखंडता बनी रहे ।
देश के हर-एक जन में शुद्धता बनी रहे ॥
पर्वतों की शृंखलायें वृक्ष से ढकी रहे ।
गंगा-कावेरी में शुद्ध स्वच्छ जल बहे ॥
देवी-देवता के वास और उनके आस-पास ।
शुद्ध वायु, शुद्ध जल सुगन्ध से भरी रहे ॥
अपने देश की हवा में ओजोजन बनी रहे ।
बेगनी-परा के दुष्प्रभाव से बची रहे ॥
पर्यावरण हो जो शुद्ध मन-विचार हों पवित्र ।
गंगा-हिमालय का एक-एक जन हो सद्चरित्र ॥
एकता बनी रहे अखण्डता बनी रहे ।
देश के हर-एक जन में शुद्धता बनी रहे ॥

फ़ारिग (वि० श०)

